Reg. No. 124726035RC0001 ISSN : 2562-6086

पुस्तक भारती रिसर्च जर्नल

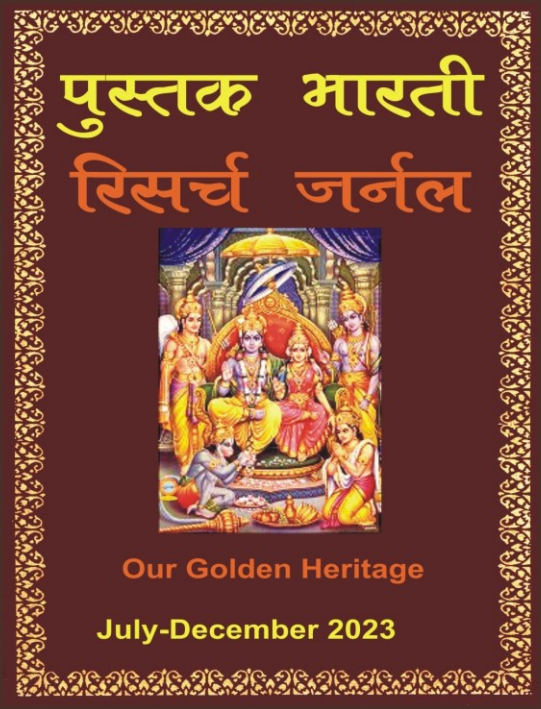

July-December 2023

Pustak Bharati, Toronto, Canada

पुस्तक भारती रिसर्च जर्नल

PUSTAK BHARATI RESEARCH JOURNAL

A Peer Reviewed Journal

त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-5, जुलाई –दिसंबर, 2023, अंक 3-4

प्रधान संपादक : डॉ. रत्नाकर नराले

सह संपादक : डॉ. राकेश कुमार दूबे

रिव्यू कमेटी

डॉ. प्रो. तंकमणि अम्मा, तिरुवनन्तपुरम्
प्रो. हेमराज सुंदर, मारीशस
डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय, मुंबई
प्रो. डॉ. शांति नायर, केरल
डॉ. सिराजुद्दिन नुर्मतोव, उजबेकिस्तान
प्रो. दक्ष्य मिस्त्री, बड़ोदा
प्रो. कृष्ण कुमार मिश्र, मुंबई

संपादक मण्डल

प्रो. सोमा बंद्योपाध्याय, पश्चिम बंगाल
प्रो. विनोद कुमार मिश्र, त्रिपुरा
प्रो. उमापति दीक्षित, आगरा
प्रो. उपुल रंजीथ हेवावितानागामगे, श्रीलंका
डॉ. मैरम्बी नुरोवा, ताजिकिस्तान
प्रो. दर्शन पाण्डेय, दिल्ली

परामर्ष मण्डल

डॉ. तुलसीराम शर्मा, कनाडा
डॉ. मनोज कुमार पटैरिया, नई दिल्ली
डॉ. एन. के. चतुर्वेदी, जोधपुर
प्रो. नीलू गुप्ता, अमेरिका
डॉ. मृदुल कीर्ति, आस्ट्रेलिया
प्रो. कमलेश शर्मा, कोटा

संरक्षक मण्डल

डॉ. यशवंत पाठक, अमेरिका
श्री रतन पवन, अमेरिका
श्री पंकज पटेल, अमेरिका

पत्रिका का मूल्य / सदस्यता राशि संस्था के सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, मंगारी के खाता संख्या 5144696109 (IFSC: CBIN0281306) में जमाकर उसकी सूचना मेल या नं. +91-7355682455 पर दें।

अनुक्रमणिका

संपादकीय

1. रामायण : प्राचीन भारतीय इतिहास व संस्कृति का प्रमुख स्रोत 1
   प्रो.(श्रीमती) कमलेश शर्मा (भारद्वाज)
2. राम काव्य परम्परा में तुलसीदास 8
   डॉ. नीतू शर्मा
3. जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी 17
   डॉ. राम गरीब पाण्डेय 'विकल'
4. रामायण कथित नीति शास्त्र 24
   सुधा शर्मा
5. असमिया रामायणी परम्परा : एक अध्ययन 32
   डॉ. सत्यजित कलिता
6. भारत के दक्षिणी प्रांत केरल की आदिम वन्यजातियों में रामायण कथा 38
   प्रो.(डॉ.) एस. तंकमणि अम्मा
7. भारतीय समाज के नवनिर्माण में सहायक : रामकथा 43
   डॉ. अनुपमा सिंह
8. हिन्दी काव्य परंपरा में रामायण की अभिव्यक्ति 48
   सिद्धेश्वर प्रसाद सिंह
9. विदेशों में रामायण की रामकथा 55
   डॉ. नलिनी श्रीवास्तव
10. भारतीय समाज के पथ प्रदर्शक के रूप में रामायण 59
    प्रतिभा तिवारी

संपादकीय कार्यालय

Toronto, Ontario, Canada, M2R 3E4
email : pustak.bharati.canada@gmail.com

प्रबंध एवं वितरण

Pustak Bharati (Books-India)Publishers & Distributors
H.No. 168, Nehiyan,Varanasi-221202, U. P. India
email: pustak.bharati.india@gmail.com

* प्रत्येक शोध-पत्र में व्यक्त विचार लेखक के अपने हैं। संपादक मंडल का उससे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

संपादकीय

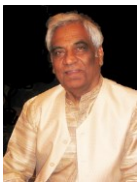

रत्नाकर नराले

पुस्तक भारती रिसर्च जर्नल का रामायण पर केंद्रित बहुप्रतीक्षित अंक आप सभी के समक्ष प्रस्तुत करते हुए प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। लगभग तीन वर्ष पूर्व ही इस विशेष अंक की योजना बनी थी और श्रीरामलला के मंदिर उद्घाटन के अवसर पर इसे प्रकाशित किया जाना था पर अस्वस्थता के कारण यह संभव नहीं हो सका था। उसी संकल्प को आज आप सभी के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूँ।

सनातन संस्कृति विश्व की प्राचीनतम् संस्कृति है और श्रीराम उस संस्कृति के आधार हैं। राम भारतीय जनमानस के रग–रग में रचे–बसे हैं। श्रीराम के चरित्र को ही सर्वप्रथम महर्षि वाल्मीकि ने रामायण और बाद में देश–विदेश के असंख्य कवियों और लेखकों ने अलग–अलग नामों से लेखनीबद्ध किया। इन समस्त ग्रंथों में रामायण मूल है जिसमें आदर्श राज्य, आदर्श राजा, आदर्श पिता, आदर्श पुत्र, आदर्श पत्नी, आदर्श भाई, आदर्श समाज इत्यादि का जो निदर्शन प्रस्तुत किया गया वह कई सदियों बाद आज भी न केवल भारतीय समुदाय वरन् विश्व के अन्य समुदायों एवं संस्कृतियों के लिए एक आदर्श एवं अनुकरणीय व्यवस्था है। संस्कृत एवं हिंदी के अतिरिक्त भारत की ही जिन अन्य भाषाओं में राम आधारित ग्रंथ लिखे गये अथवा रामायण का अनुवाद हुआ या विदेशी भाषाओं में लिखे गये अथवा अनुवादित हुए, सभी में राम के प्रति आदर एवं सम्मान लगभग एक जैसा दिखलायी पड़ता है।

भारतीय जनमानस में जब भी निराशा के विद्रूप लक्षण दिखे तब जनता जनार्दन ने श्रीराम की शरण लेकर अपने आप को कृतार्थ किया। यहां तक कि जब ब्रिटिश काल में भारतीयों को गिरमिटिया मजदूरों के रुप में विदेशों में ले जाया गया तो भारतीय लोगों ने रामायण, श्रीरामचरित मानस और हनुमान चालीसा को छुपाकर अपने साथ ले गये और वहीं उनकी विपत्तिकाल में उनका सबसे बड़ा सहारा और प्रेरणास्रोत था। यहीं कारण है कि आज भी प्रवासी भारतवंशियों में यह प्रथा जीवंत है और उन्हें भारत से जोड़े हुए है।

रामायण का भारतीय जनमानस पर व्यापक प्रभाव रहा है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण 'रामायण' धारावाहिक को माना जा सकता है। इस धारावाहिक को जिस श्रद्धा, आदर और भक्तिभाव से न केवल भारत बल्कि विश्व के कितने ही देशों में और विविध भाषाओं में देखा गया, वह अपने आप में अनूठी बात है। कोरोना महामारी के समय तो 'रामायण' धारावाहिक ने एक साथ सबसे अधिक देखे जाने का विश्व कीर्तिमान स्थापित कर दिया।

श्रीरामलला के मंदिर उद्घाटन को विश्वभर में जिस प्रकार से देखा गया और उसके बाद न केवल भारत वरन् विश्वभर से सभी आयुवर्ग के श्रद्धालुओं का दर्शन करने अयोध्या आना इस बात का प्रमाण है कि कि श्रीराम ने जो आदर्श स्थापित किया था, वही आज भी एक मानक और सभी के लिए प्रेरणास्रोत है।

आज भारतीय संस्कृति एवं उसके अभिन्न अंग रामायण का विश्वभर में प्रचार बढ़ रहा है। आज भारतीय ही नहीं, अपितु अभारतीय भी भारतीय संस्कृति और उसके विविध घटकों में अपनी आस्था प्रकट कर रहे हैं और अपनी जीवनशैली को उसके अनुसार बनाने का प्रयास कर रहे हैं और रामायण उसका एक प्रमुख और सशक्त माध्यम बन रहा है। आशा है रामायण पर केंद्रित पत्रिका की यह आवृत्ति सभी को पसंद आयेगी।

... संपादक

1 रामायण : प्राचीन भारतीय इतिहास व संस्कृति का प्रमुख स्रोत

प्रो.(श्रीमती) कमलेश शर्मा (भारद्वाज)

यह सत्य नहीं है कि प्राचीन भारत ने हेरोडोटस पैदा नहीं किया, जो 'हिस्ट्री' जैसा ग्रंथ लिखता। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि प्राचीन भारत के लोगों की इतिहास में रूचि नहीं थीं। वस्तुतः उनकी इतिहास विषयक अवधारणा आज के संदर्भ में सर्वथा भिन्न थी। आधुनिक अर्थ में इतिहास आलेखन का प्रयास करने वाले विद्वानों को प्राचीन भारत के इतिहास लेखन में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, क्योंकि तत्कालीन साहित्य में इतिहास आख्यान, गाथाओं, नाराशंसी, धर्मशास्त्र, वंशविस्तार आदि विषयों के साथ संबद्ध है। इति, 'ह' 'आस' के समुच्चय से 'इतिहास' बना है जिसका अभिप्राय है 'निश्चित रूप से ऐसा हुआ।' तदनुसार मानव से सम्बद्ध अतीत की घटनाओं का सही निरूपण कर सकें उन ग्रंथों को इतिहास की श्रेणी में रखा जाता है। भारतीय दृष्टिकोण मुख्यतः आध्यात्मिक रहा है। विचारों व मूल्यों को महत्त्व दिया गया है। बल्कि यूं कहना चाहिए कि अधिकांशतः भौतिक घटनाओं के लेखे–जोखे का महत्त्व अलग से नहीं पहचाना गया है। इसे हम साहित्य में एक 'सामूहिक दृष्टिकोण' का नाम दे सकते हैं। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि इतिहास जानने के साधनों का पूर्णतः अभाव है। सत्य तो यह है कि हमारे पास विश्व का सबसे विशाल साहित्य, जो हमारी सांस्कृतिक धरोहर है, उसी में से ऐतिहासिक सामग्री अलग करनी होती है। परवर्तीकाल में हमारी बहुत–सी साहित्यिक सामग्री आक्रमणकारियों द्वारा नष्ट कर दी गई थी। बहुत सी पाण्डुलिपियों में इतिहास बिखरा पड़ा है, जिसे पढ़ा जाना शेष है।

हमें इस बात की जानकारी मिलती है कि भारत में अलग से भी इतिहास लिखने के प्रयास किए गए थे। गुप्त अभिलेखों में अक्षपटलाधिकृत नामक पदाधिकारी का उल्लेख है।[1] सातवीं शताब्दी में भारत का परिभ्रमण करने वाले चीनी यात्री हेनसांग के विवरण से अच्छी–बुरी घटनाओं का वृतान्त लिखने वाले अधिकारी का बोध होता है।[2] कश्मीरी लेखक कल्हण ने भी लिखा है कि वही गुणवान कवि प्रशंसा का पात्र है जो राग द्वेष से ऊपर उठकर एक मात्र सत्य निरूपण में ही अपनी भाषा का प्रयोग करता है।[3] यहाँ कल्हण का संकेत एक अच्छे इतिहासकार की ओर ही है। कहा जा सकता है कि प्राचीन भारत के निवासियों में इतिहास के प्रति अभिरूचि एवं चेतना दोनों विद्यमान थी। वैदिक काल से आधुनिक काल तक भारतीय इतिहास में तारतम्यता है।[4] वस्तुतः भारतीय मनीषी इतिहास को एक व्यापक संदर्भ में देखते थे।[5] उन्हें अपना नाम उजागर करने की ललक न थी। महाभारत में कहा गया है जिससे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार पुरूषार्थ की शिक्षा मिले वही इतिहास है। इनसे ही जीवन का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है। इतिहास के स्रोतों को साहित्यिक व पुरातात्त्विक दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

साहित्यिक स्रोत

प्राचीन साहित्यिक सामग्री इतिहास व संस्कृति पर पर्याप्त प्रकाश डालती हैं, इनके महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। प्राचीन भारतीय साहित्यिक विरासत अति विशाल है। इनके अंतर्गत वेद, महाकाव्य, पुराण, स्मृतियाँ, धर्मशास्त्र आदि शामिल हैं। वेदों से चली यह विरासत बौद्ध–जैन ग्रथों तक फैली है। विश्व के किसी भी देश के पास इतना विशाल साहित्यिक भंडार नहीं है जितना भारत के पास है, जो भारतीय इतिहास व संस्कृति के प्रमुख स्रोत हैं, और जिसे देखकर विदेशियों की आँखें भी चौंधियाँ गयी हैं। मोनियर विलियम्स, मैक्समूलर, विंटरनिल्ज, मैक्डोनल्ड ने इनका अध्ययन किया है। इनका दृष्टिकोण साम्राज्यवादी सोच से प्रेरित था। प्राचीन भारतीय संस्कृत ग्रंथों को मैक्समूलर ने सेक्रेड बुक्स ऑफ ईस्ट में संकलित किया है। संस्कृत ग्रंथों का अंग्रेजी अनुवाद पूर्णतः सही प्रतीत नहीं होता। अर्थ का अनर्थ होने की संभावना रहती

है। विदेशी इतिहासकारों व विदेशी पर्यटकों के साक्ष्यों को हमें सावधानी से प्रयोग करना होगा, भारतीय साक्ष्यों से उनका प्रमाणीकरण आवश्यक है। प्राचीन ग्रंथों का प्रकाशन गीताप्रेस गोरखपुर, चौखम्बा, बनारस, निर्णय सागर, शांतिकुंज हरिद्वार आदि ने किया है। प्राचीन ग्रंथ हजारों वर्षों तक मौखिक पंरपरा के रूप में श्रुति व स्मृति के रूप में संकलित थे। कालांतर में देश–काल के अनुरूप इनमें परिवर्तन हुआ और उन्हें लिपिबद्ध किया गया।

भारतीय इतिहास व संस्कृति के ये प्रमुख स्रोत हैं। जिनमें हिन्दुओं के ज्ञान व दर्शन, विधि व न्याय, योग व आयुर्वेद, भूगोल व पर्यावरण, यज्ञ व भक्ति, पर्यावरण व वन संरक्षण, जीवन जीने की कला व वर्णाश्रम व्यवस्था, नीति व राजधर्म, मानवीय संबंध (पिता–पुत्र, माता–पुत्र, गुरू–शिष्य, राजा–प्रजा आदि), व्यापारिक साझेदारी के नियम, व्यापारिक संघों का निर्माण, आदि विविध विषयों का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। इनमें यत्र तत्र बहुत सी ऐतिहासिक सामग्री भी बिखरी पड़ी है। बहुत सी प्रमुख ऐतिहासिक घटनाओं की जानकारी साहित्य से प्राप्त होती है जिसकी पुष्टि पुरातात्विक स्रोतों से भी होती है।

महाकाव्य

रामायण और महाभारत भारत के अति प्राचीन महाकाव्य हैं, जिनमें मानव जीवन के उदात्त सिद्धान्तों का विवरण है। ये भारतीय जीवन के प्रकाश स्तंभ हैं। भारतीय समाज में आज भी इनका महत्व माना गया है। रामायण के रचियता वाल्मीकी व महाभारत के व्यास माने गये हैं। आज उनका जो रूप हमारे समक्ष है वह किसी एक युग या एक ही लेखक की कृति नहीं है। इनमें समय–समय पर संशोधन और परिवर्तन किये गये हैं। संस्कृत के मूल रामायण में केवल पांच कांड ही थे, परन्तु आज इसमें सात काण्ड (बालकांड, अध्योध्या कांड, अरण्य कांड, किष्किंधा कांड, सुन्दरकांड, युद्ध कांड एवं उत्तराकांड) और 24000 श्लोक है। वाल्मिकी के पांच कांड वाले मूल रामायण ग्रंथ मे ंराम को युग का एक महान पुरूष माना है, और उसी रूप में चरित्र–चित्रण हुआ है। रामायण के प्रथम और सप्तम कांड में राम को ईश्वर के अवतार के रूप में माना गया। संभावना है कि ये दो कांड बाद में जुड़े हों।

साहित्यिक परंपरा में वाल्मीकि का स्थान उच्च कोटि का है। ऐसी मान्यता है कि करूणा की भावना से प्रभावित होकर वाल्मीकी ने रामायण की रचना की थी । ऐसा कहा जाता है कि एक शिकारी ने क्रोंच पक्षियों के जोड़े में से एक को अपने बाण से निशाना बनाकर मार डाला तब वाल्मीकी का हृदय द्रवीभूत हो गया। उन्होंने निषाद को शाप दिया। स्वयं ब्रह्मा वहाँ उपस्थित हुए और उन्होंने वाल्मीकी को रामायण की रचना करने का आदेश दिया। ब्रह्मा की प्रेरणा से ही वाल्मीकि ने रामायण लिखी।

रामायण तीन हैं–वाल्मीकि रामायण, आध्यात्मिक रामायण और तुलसी रामायण (रामचरितमानस)। इन तीनों की मूल कथा तो एक है परन्तु इनके रचनाकारों ने अपने–अपने दृष्टिकोण से तत्कालीन सामाजिक जीवन, धार्मिक दशा आदि का वर्णन किया है। पात्रों के चरित्र–चित्रण में थोड़ा अंतर आ गया है। तमिल, तेलुगु आदि अन्य भाषाओं में लोकगीतों में भी रामायण हैं, जावा, वर्मा, कम्बोडिया आदि ऐशियायी देशों में भी रामायण कथा का लेखन हुआ है। वाल्मीकि के राम मनुष्य रूप में चित्रित हुए हैं। मानवी स्वभाव की दुर्बलताऐं और दृढ़ताऐं उनमें हैं परन्तु तुलसी के राम सर्वव्यापी व सर्वशक्तिमान है। वे मोक्षदायक है और भगवान विष्णु के अवतार है। महाभारत में अठारह पर्व और लगभग एक लाख श्लोक हैं। महाभारत एक विशाल ऐतिहासिक ग्रंथ है, इसमें गाथाऐं, कहानियाँ के साथ ऐतिहासिक तथ्यों का भी समावेश है। ये दोनों ही ग्रंथ शताब्दियों से हिन्दू समाज के प्राण और प्रेरणा स्रोत हैं।

रामायण

रामायण में वर्णित भौगोलिक वातावरण के आधार पर ही रामायण को महाभारत से प्राचीन माना गया है। रामायण में महाभारत का उल्लेख नहीं है, स्पष्ट है इसके रचनाकार को इसकी जानकारी नहीं थी। यह कहा जा सकता है कि रामायण की रचना ईसा पूर्व 500 या 600 वर्ष पूर्व में हुई। विंटरनित्स का मानना है कि रामायण का वर्तमान रूप निश्चित रूप से 200 ईसवी तब बन गया था।[6] अन्य विद्वानों ने भी रामायण के रचनाकार के बारे में भिन्न–भिन्न मत व्यक्त किए हैं। कामिन बुल्के ने इसका समय 600 ई.पू. माना है। मैकडोनल के अनुसार रामायण की रचना 500ई.पू. में और इसका संशोधन 200 ई.पू. में हुआ। ये सभी मत अनुमान पर ही आधारित हैं और रामायण की पूर्व सीमा न बताकर ऊपर सीमा

का संकेत करते हैं। ये सभी मत निम्न बातों को ध्यान में रखकर व्यक्त किये गये हैं –

रामायण में बौद्ध धर्म का अभाव है। अतः मूल रामायण बुद्ध (जन्म 563 ई.पू.–निर्वाण 483 ई.पू.) से पूर्ववर्ती है। दोनों ही महाकाव्यों की पूर्व सीमा वैदिक काल की समाप्ति है। रामायण में पाटलिपुत्र जिसे अजातशत्रु (ई.पू. 491–459तक) ने बनवाया था, उनका उल्लेख नहीं है। रामायण में वैशाली और मिथिला का उल्लेख हुआ है। ये दोनों स्वतंत्र राज्य थे। यह अवस्था बुद्ध से पूर्व की ही है। रामायण में यूनानी प्रभाव भी बहुत कम दिखाई देता है, इसकी रचना भारत में युनानियों के आगमन से पूर्व हुई। मूल रामायण में राम को अवतार नहीं माना गया है। अवतार की भावना का उदय 5 वीं श. ई. पू. बुद्ध के बाद में हुआ है। तत्कालीन समाज के आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक जीवन का इसमें अच्छा चित्रण मिलता है। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि रामायण 600 ई.पू. के बाद की रचना नहीं है। इसके आंतरिक साक्ष्यों से इसकी पुष्टि हो जाती है। रामायण का वर्तमान रूप प्रथम या द्वितीय शताब्दी में निश्चित रूप में इस रूप में आ चुका था।

महाकाव्यों में वर्णित सभ्यता किसी एक समय की नहीं है। यह भिन्न–भिन्न कालों की है। कहीं–कहीं पर तो इनमें मानवीय सभ्यता के क्रमिक रूप का चित्रण किया गया है। लेकिन इतना होने पर भी दोनों महाकाव्यों में वर्णित अवस्थाऐं एवं विचारधाराऐं बहुत कुछ समान रूप में हैं।[7] रामायण त्रेता युग का और महाभारत द्वापर युग का प्रतिनिधित्व करती है। महाभारत का युद्ध 2000 ई.पू. से 1000 ई. के मध्य माना गया है। लोक कथाओं एवं गीतों के माध्यम से युद्धकालीन विवरणों को सजीव रखा गया। महाकाव्यों का भौगोलिक व सांस्कृतिक परिवेश वास्तविक लगता है। मौखिक परंपराओं में पीढ़ी दर पीढ़ी मूल कथा चलती रही जिसे कालांतर में लेखवद्ध किया गया।

कथानक

रामायण में इक्ष्वाकु वंशीय दशरथ व उसके पुत्रों की कथा है। कौशल नरेश दशरथ के तीन रानियाँ, कौशल्या, सुमित्रा, कैकयी तथा चार पुत्र राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न थे। वृद्धावस्था में दशरथ अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को राज्य देना चाहते थे, परन्तु कैकई ने इसमें बाधा डाली। उसने दशरथ से दो वर मांगे, प्रथम राम के बदले में अपने पुत्र भरत को राजसिंहासन और द्वितीय राम को चौदह वर्ष का वनवास। राम अपनी पत्नी सीता और छोटे भाई लक्ष्मण के साथ वन में चले गये। भरत ने राजपद ग्रहण नहीं किया। पुत्र के वियोग में दशरथ की मृत्यु हो गई। राम सीता व लक्ष्मण के साथ दुःख झेलते हुए दक्षिण तक बढ़ गये। लंका के राजा रावन ने सीता का अपहरण किया। राम ने वानरों के सेना हनुमान और राजा सुग्रीव की नेता की सहायता से रावण पर आक्रमण किया। अंत में रावण पराजित हुआ और राम सीता व लक्ष्मण के साथ अयोध्या लौट आये। रावण के यहां रहने से सीता के सतीत्त्व पर संदेह किया जाने लगा। राम ने गर्भवती सीता का त्याग लोकोपवाद के कारण किया। वह ऋषि वाल्मीकि के आश्रम में रहने लगी। वहां उसने लव व कुश को जन्म दिया। राम ने जब अश्वमेघ यज्ञ किया तब लव–कुश ने यज्ञ के घोड़े को रोक लिया। राम की सेना व लव–कुश में युद्ध हुआ। अंत में राम स्वयं उनसे मिलने आये और उनको अयोध्या ले गये। वर्तमान रूप में रामायण व महाभारत में कई संशोधन हुए। देशकाल के अनुरूप राजनीति, धर्म, दर्शन के क्षेत्र में परिर्वनों को इन महाकाव्यों में शामिल किया गया।

यह परिवर्तन, प्रक्रिया, सभ्यता व संस्कृति की गत्यात्मकता का प्रतीक है। दोनों महाकाव्य ऐतिहासिक, साहित्यिक, दार्शनिक व धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। भारतीय संस्कृत साहित्य की ये सर्वोत्कृष्ट कृतियां हैं। भारतीय साहित्यकारों के लिये ये प्रेरणा स्रोत हैं। भारतीय नीति और दर्शन के भी ये मूल स्रोत है। महाभारत को समस्त दर्शनों का सार, स्मृतियों का विवेचन ग्रंथ एवं पंचम वेद माना गया है। वैष्णव, शैव व अन्य धर्मों पर भी ये प्रकाश डालते हैं। महाभारत में कर्म, तप, ज्ञान, भक्ति आदि का समावेश है।

ऐतिहासिक महत्त्व

रामायण भारतीय संस्कृति का दर्पण है। यह उच्च मानवीय आदर्शों से ओत–प्रोत है। प्रत्येक हिन्दू के घर में यह विद्यमान रहती है। जिससे उन्हें जीवन दर्शन व मार्गदर्शन मिलता है। रामायण केवल वीर काव्य ही नहीं है, आचार शास्त्र, नीति शास्त्र एवं धर्मशास्त्र भी है। इसमें मानव जीवन के विभिन्न आदर्श बताए गये हैं। इसमें प्राचीन भारतीय संस्कृति, धार्मिक जीवन, नैतिक मूल्यों की चर्चा हुई है। सामाजिक दृष्टि से यह पति–पत्नि के संबंध,

पिता–पुत्र के कर्तव्य, गुरू–शिष्य का पारस्परिक व्यवहार, भाई का भाई के प्रति कर्तव्य, व्यक्ति का समाज के प्रति उत्तरदायित्व, आदर्श माता–पिता, पुत्र–भाई, पति एवं पत्नि का चित्रण, आदर्श गृहस्थ जीवन की अभिव्यक्ति करता है। इसमें राजा का प्रजा से सोहार्द्र उल्लेखनीय है। राम–राज्य को आदर्श बताया गया है। राजा के कर्तव्य और अधिकार, राजा–प्रजा संबंध, उच्च नागरिकता, सैन्य संचालन आदि विषयों पर भी महत्वपूर्ण प्रकाश डाला गया है। इसमें प्राचीन भारतीय सभ्यता, नगर व ग्राम, निर्माण, सेतुबंध, वर्णाश्रम व्यवस्था, प्रकृति चित्रण आदि विविध पक्षों से संबंधित विवरण मिलता है। इसमें मानव जीवन की विभिन्न समस्याओं का निदान भी प्राप्त होता है।

रामायण में गृहस्थ जीवन के उच्च आदर्शों को अपनाया गया है। इनके अधिकतर पात्र किसी न किसी उच्च आदर्श को स्थापित करते हैं। इनमें वर्णित धर्म, आचार–विचार, संस्थाऐं, प्रणालियाँ और आदर्श सदियों से भारतीयों का प्रभावित करते आ रहे हैं। महाकाव्यों की ऐतिहासिकता की पुष्टि पुरातात्विक प्रमाणों से भी होती है। उत्खननों से अयोध्या, जनकपुरी, कुरूक्षेत्र, इंद्रप्रस्थ, हस्तिप्रस्थ, हस्तिनापुर, द्वारका आदि नगरों के अस्तित्व की जानकारी मिलती है। इनमें इनकी ऐतिहासिकता में संदेह नहीं किया जा सकता है। इतिहासकारों ने समकालीन पुरातात्विक स्थलों को खोज लिया है। इस क्षेत्र में अनुसंधान जारी है।

रामायण से तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक स्थिति व आध्यात्मिक विचारधाराओं के विषय में बहुमूल्य सामग्री प्राप्त होती है। इनमें ऐतिहासिक घटनाओं के साथ–साथ तत्कालीन नैतिक, धार्मिक, दार्शनिक, आदर्शों को भी संग्रहित किया गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से श्री राम की दक्षिण यात्रा महत्वपूर्ण है। यह राम की दक्षिण विजय का प्रथम वर्णन है। प्राचीन आर्यावर्त की राजनीतिक एकता दिखाई देती है। प्राचीन भारतीयों की सांस्कृतिक एकता सुदूर दक्षिण तक विद्यमान थी। वर्तमान में इतिहासकारों ने राम के वनगमन पथ के प्रमुख स्थानों को चिन्हित कर लिया है। श्रीलंका में भी रामायण से संबंधित साक्ष्यों को खोजा जा चुका है। रामसेतु का अस्तित्व भी प्रमाणित हो चुका है। रामायण की ऐतिहासिकता को नकारा नहीं जा सकता। प्राचीन भारतीय इतिहास व संस्कृति को जानने का यह प्रमुख स्रोत है। इसमें प्राचीन भारतीय राजनीतिक सामाजिक आर्थिक, जीवन की जानकारी मिलती है। साथ ही प्राचीन पर्यावरण चित्रण भी है।

राजनीतिक जीवन

कुरू, पांचाल व कौशाम्बी, कोशल, काशी, विदेह आदि इस युग के विशाल राज्य थे। महाभारत की भौगोलिक सीमाऐं रामायण से अधिक व्यापक थी। श्री राम और युधिष्ठर ने अश्वमेध यज्ञ किये। यह यज्ञ साम्राज्यवादी भावना का प्रतीक है। महाभारत में रामायण की अपेक्षा बहुत से क्षेत्रों, जैसे राजनीति, युद्धकाल, कुटनीति आदि से अधिक विकसित सभ्यता दिखाई देती है। महाभारत में विकसित राजनीतिक चिंतन दिखाई देता है। भीष्म को इन विचारों का प्रतिपादक बताया गया है। महाभारत के शांतिपर्व के राजधर्मानुशासन पर्व में महत्वपूर्ण राजनीतिक चिंतन मिलता है। राजसंस्था की उत्पत्ति के बारे में भी विचार विमर्श हुआ है। राजा को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। राजतंत्रात्मक राज्यों का बाहुल्य था। राजा की सत्ता देवता से जुड़ी थी वह वंशानुगत राजपद प्राप्त करता था। फिर भी वह धर्मानुसार शासन करता था। निरंकुश नहीं था उस पर नियंत्रण थे। वैदिक काल की भांति उसे राज्याभिषेक के समय वचन–कर्म से धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करने व कभी स्वेच्छाचारिता न करने की प्रतिज्ञा लेनी होती थी। सामान्यत ज्येष्ठ पुत्र ही राजा बनता था। सभा और मंत्रीपरिषद् का राज्य नीति निर्धारण में महत्वपूर्ण स्थान था।

रामायण में मंत्रियों के अतिरिक्त विद्धानों व प्रमुख सैनिक अधिकारियों का उल्लेख है जो शासन में राजा को परामर्श देते थे। राम के उत्तराधिकारी घोषित होने पर प्रमुख पुरूषों की एक सभा हुई। प्रशासन के अठारह विभागों का उल्लेख अयोध्या काण्ड में हुआ है।[8] मंत्री (मुख्य सलाहकार), पुरोहित, युवराज, चमूपति (मुख्य सेनापति), द्वारपाल, अन्तर्वेशिक (अन्तःपुर का अधीक्षक), कारागार अधिकारी, द्रव्य संचयकृत (राजभवन का मुख्य परिचारक), विनियोजक (मुख्य कार्याधिकारी), प्रदेष्टा (मुख्य न्यायाधीश), नगराधादत, कार्यनिर्माण कृत (मुख्य अभियन्ता), धर्माध्यक्ष, सभाध्यक्ष, दण्डपाल, दुर्गपाल, राष्ट्रान्तपालक (सीमारक्षक), अटवीपाल (अरण्य संरक्षक)। राजा अपने मंत्रियों पर ही निर्भर रहता था। महाभारत में चारों वर्णों से मंत्रियों के

लिए जाने का उल्लेख है। वैदिक काल की भांति अब भी पुरोहित का महत्त्व कायम था। राजा उनसे परामर्श लेता था। बाह्म आक्रमणों से रक्षा एवं आन्तरिक शान्ति बनाये रखने के लिए स्थायी सेना रखी जाती थी। सेना में पदाति (पैदल) अश्वारोही, गजारोही एवं रथ शामिल होते थे। चतुरंगिणी सेना का सर्वोच्च सेनापति राजा ही कहा गया है। युद्ध में धनुषबाण, तलवार, फर्सा, बर्छी, भाला, गदा, ढाल, कवच, शिरस्त्राण आदि प्रयोग में लाये जाते थे।

विजयी राजा का पराजित राजा के साथ व्यवहार का व्यापक विवेचन मनुस्मृति में मिलता है। पुराने राजा के वंश में उत्पन्न व्यक्ति को उस राज्य में पुनः राजपद पर अभिषिप्त करें। उसके राज्य से लौट आना चाहिए। मनु ने मित्रता, सुवर्ण और भूमि में मित्रता को श्रेष्ठ माना है।[9] राजा राम ने भी मित्रता की नीति का पालन दिया।

रामायण में एक आदर्श राज्य की परिकल्पना दिखाई देती है। प्रजापालन, प्रजारंजन, प्रजारक्षण पर बहुत जोर दिया गया है। राम एक आदर्श व मर्यादा पुरूषोंत्तम हैं, जो सर्वदा प्रजाहित चिंतन में रत रहते है। यह माना जाता था कि जिस राजा के राज्य में प्रजा दुखी और पीडित है वह राजा अवश्य ही नरक का अधिकारी होता है। (जासु राज्य प्रिय प्रजा दुखारी, सौ नृप अवसि, नरक अधिकारी (अयोध्याकाण्ड)। राजा रामचंद के राज में कहीं भी विषमता नहीं है, लोग वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हैं। दैहिक, दैविक एवं भौतिक तापों से मुक्त हैं। पीडा, दारिद्रय, दुःख अकालादि वहां नहीं व्यापते। राज्य में नरलोक, प्राणिलोक, वनस्पति लोक और प्रकृति में परस्पर पूर्ण सामंजस्य है। ये सभी अपने कर्त्तव्यों में निष्णात हैं।[10] स्पष्ट है कि पर्यावरण पूर्ण स्वच्छ और संतुलित है। रामराज्य नीति और निष्ठा से संचालित राज्य है, जो धर्मराज्य है। धर्म को प्रथम और धन को द्वितीय स्थान देकर रामराज्य में सुखद वातावरण बनाया गया।[11]

राम को एक आदर्श पुरूष बताया है जो नीतिज्ञ, धर्म के प्रतीक एवं आत्मसंयमी है। उनका नेतृत्व प्रजातांत्रिक है, वे जनहित में पूरी तरह समर्पित है।[12] आश्रम में रहने वाले ऋषि–मुनि एवं शिक्षक भी अपने नेतृत्व से प्रभावशील थे। रामायण में राज्य में शांति एवं व्यवसथा हेतु कुशल नेतृत्व का प्रभाव दिखाई देता है। राम सिद्धान्तवादी, कूटनीतिज्ञ के रूप में लोक प्रियता प्राप्त करते है और अपने कुशल नेतृत्व से समाज को संगठित व नियंत्रित करने में सशक्त भूमिका का निर्वाह करते हैं। पुरस्कार देने, अपराध के लिए दंड देने में वे सक्षम हैं।[3] सज्जनों का संरक्षण व दुर्जनों को दंड देकर समाज व राज्य को सुरक्षित बनाते है।

रामायण में धर्म एवं नीति पर चलकर जनहित करने पर जोर दिया गया है। राम, विभिषण, सुग्रीव आदि का नेतृत्व इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। तुलसी ने रामराज्य में राजा–प्रजा को परस्पर पूरक रूप से वर्णित किया है। अत्याचारी शासक को नकारा है और प्रजा की आज्ञाकारिता पर जोर दिया है। राजा की दृष्टि में संपूर्ण प्रजा समान होनी चाहिए। तुलसीदास जी कहते हैं राजा को मुख के समान होना चाहिए। जिस प्रकार मुख आहार का वितरण सभी अंगों को समान रूप से करता है। उसी प्रकार राजा को भी संपूर्ण प्रजा के साथ समानता का व्यवहार करना चाहिए। राम समष्टिपरक है, समाज के अपेक्षित व पिछड़े वर्ग को भी साथ लेकर चलते हैं। केवट व शबरी प्रसंग से यह स्पष्ट हो जाता है। वानर संस्कृति का विकास कर उसे समाज की मुख्यधारा से जोड़ा। जनजातीय शासकों (निषद आदि) को भी समानता व मित्रता प्रदान करते है। रामायण में राजा, मंडिपरिषद्, पुरोहित–दुत, चर, स्वायत्त शासन, सेना, युद्ध के नियम कर प्रणाली का विस्तृत विवरण मिलता है।

सामाजिक जीवन

रामायण में एक आदर्श परिवार व समाज का चित्रण मिलता है। आदर्श राजा, पिता, पुत्र, भाई, पत्नी आदि का चित्रण किया गया है। समाज में वर्णाश्रम धर्म का प्रचलन था। चार वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र) का अस्तित्व था उनके कर्तव्यों का उल्लेख हुआ है। ब्राह्मणों को समाज में उच्च स्थान प्राप्त था, लेकिन इसका आधार उनका स्वाध्याय, तप और अच्छे कर्म थे। क्षत्रियों के लिए वीरता, तेज, धैर्य, दान, युद्ध से न भागना आदि गुण अवश्य थे। वैश्यवर्ण का व्यवसाय कृषि और व्यापार था..... इसमें विभिन्न व्यवसायों वाले लोग शामिल थे। जैसे कृषक, व्यापारी, लुहार, सुनार, बढ़इ, तेली, बुनकर आदि। वर्ण व्यवस्था कर्मगत थी न कि जन्मगत। सदाचारी शुद्रों का समाज में सम्मान था। विशेष परिस्थितियों में एक वर्ण दूसरे का कार्य भी कर सकते थे। परशुराम क्षत्रियों के कार्य करते दिख रहे है। समाज में अनेक छोटी जातियों का अस्तित्व

भी था। तुलसी रामायण में यवन व शकों का उल्लेख हुआ है, जो समाज में समाहित हो चुके थे। चार आश्रमों (गृहस्थ, ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ एवं सन्यास) का बोध होता है। विवाह पद्धति, महिलाओं की दशा, शिक्षा व्यवस्था, संस्कारों की जानकारी मिलती है। गुरूकुल व ऋषि आश्रमों में शिक्षा की व्यवस्था थी। वाल्मिकी, भारद्वाज आदि द्वारा संचालित आश्रमों को शिक्षा के महान केन्द्र की संज्ञा दी गयी है।

ब्रह्मचर्याश्रम में शिक्षा ग्रहण की प्रथा थी, जिसका प्रारंभ उपनयन संस्कार के द्वारा होता था। धर्मशास्त्र, दर्शन, राजनीति, इतिहास, आयुर्वेद, अथर्ववेद, अर्थशास्त्र आदि की शिक्षा के साथ शस्त्र संचालन व धनुरविद्या भी प्रदान की जाती थी। आश्रमों व गुरूकुलों का संचालन भेंटादि व राजा के सहयोग से होता था। गुरूकुलों की अपनी गौशालाऐं भी होती थीं व कृषि योग्य कुछ भूमि भी। स्त्रियां भी समान रूप से शिक्षित होती थीं, विशेष रूप से उच्चवर्ण की महिलायें।[14] कौशल्या एवं तारा को 'मंत्रविद' कह कर संबोधित किया है। कैकयी को शास्त्र विद्या में प्रवीण बताया गया है व मंदोदरी को भी अत्यन्त बुद्धिमान व नीतिवान बताया गया है। राम को प्राणीमात्र की संरक्षक बताया गया है। वन में बसने से वन–क्षेत्र की संपत्ति विकसित हुई। लिखा भी गया है –

रामराज बैठे जेलोका
हरषित भए गए सब सोका।

लोग जलाशयों, उपवनों, देवमंदिरों का निर्माण करते थे। रामराज्य में नरलोक, प्राणिलोक, वनस्पति लोक और प्रकृति में पूर्व सामंजस्य दिखाई देता है।

''फूलहिं फराहिं सदा तक कानन। रहहिं एक संग गम पंचानन।
खग मृग सहज बयरू बिसराई।
सबहि परस्पर प्रीतिबढ़ाई।''[15]

ग्रामीण जीवन का चित्रण मिलता भी है, ये आत्मनिर्भर थे, शहरी जीवन भी वैभव व सम्पन्नता से पूण थे। जनसाधारण में शाकाहारी भोजन का प्रचलन था। क्षत्रियों में मांसाहार भी प्रचलन में था। अधिकतर सूती, ऊनी, रेशमी वस्त्रों का प्रयोग होता था। लोगों का जीवन नैतिकता से पूर्ण व आशावादी था।

आर्थिक जीवन

प्राचीन काल में आर्थिक गतिविधियों के लिए वार्ता का उल्लेख है। इसके अन्तर्गत कृषि व पशुपालन एवं वाणिज्य शामिल थे। राम ने भरत से मिलते समय अयोध्यावासियों की वार्ताजन्य गतिविधियों की जानकारी ली। समाज में कृषि व वाणिज्य का महत्वपूर्ण स्थान था। जाति प्रथा के विकास के साथ–साथ अनेक उद्योग धन्धों का प्रचलन हुआ। इनमें मुख्य थे – जुलाहे, लोहे, शीशे, रांगे आदि धातुओं की वस्तुऐं बनाना, कुम्हार, धोबी, स्वर्णकार, वैद्य आदि। आर्थिक समृद्धि व वैभव कायम था। विभिन्न व्यवसायों को राज्य का संरक्षण प्राप्त होता था।

देश में अधिकांश व्यवसायी श्रेणियें में संगठित थे। इन श्रेणियों के अध्यक्ष थे, जो 'मुख्य' कहलाते थे। रामायण व महाभारत दोनों में ही श्रेणी मुख्यों का उल्लेख है। लंका से अयोध्या लौटने पर राम का स्वागत श्रेणी मुख्यों ने किया था। रामायण के लंकाकाण्ड में वाणिज्य का उल्लेख है। रामायण में काम्बोज और बाल्हीकी को घोड़ों के लिए प्रसिद्ध बताया है। [16] पशुपालन भी कृषि के साथ आर्थिक जीवन का अधार था। गाय, बैल, बकरी, भेड़ आदि पशुओं को पाला जाता था। वैदेह जनक ने अपनी राजसभा में एकत्र विद्धानों में सर्वश्रेष्ठ को पुरस्कृत करने के लिए सहस्त्र गोओं का पुरस्कार देने की घोषणा की।[17] विविध उद्योग धंधे विकसित थे। हनुमान जी जब लंका गये तो उन्हें राजमहल स्वर्ग की प्रतिकृति लग रहे थे। रावण के राजप्रासाद में स्वर्ण, रजत, मणि, मुक्ता एवं हाथी दांत का कार्य हो रहा था। रावण के पास अपने विमान का उल्लेख है, यह तकनीकी विकास को दर्शाता है।

ऊनी, सूती, रेशमी वस्त्र उत्पादकों के अतिरिक्त, दंतकार, कुंभकार, रजक, मालाकार लोहकार आदि व्यवसाय से संबंधित जानकारी भी मिलती है। अयोध्या, बनारस, काशी, मिथिला, कौशाम्बी आदि शहर समृद्ध थे। व्यापार जल व थल मार्ग दोनों से होता था। देशीय अंतर्देशीय दोनों तरह का व्यापार होता था। पुष्पक विमान के उल्लेख से वायुमार्ग का भी बोध होता है।

धार्मिक व सांस्कृतिक जीवन

वैदिक युग की तुलना में महाकाव्य काल के धार्मिक जीवन में काफी परिवर्तन हुआ था। कई नवीन धार्मिक प्रवृत्तियाँ विकसित हुई। कई नवीन देवी देवताओं की पूजा प्रारंभ हो गयी थी। बहुदेववाद की प्रवृत्ति का विकास हो गया था। महाकाव्य काल में ईश्वर की तीन प्रमुख शक्तियाँ,

सृजन शक्ति, भरण–पोषण शक्ति और संहारक शक्ति के प्रतीक ब्रह्मा, विष्णु और महेश हो गये थे। अवतारवाद की अवधारणा भी विकसित हुई। ईश्वर के प्रतीक विष्णु का महत्व बढ़ गया था। इस समय यज्ञों का स्वरूप सरल था।

शिव व विष्णु प्रमुख देवता के रूप में प्रतिष्ठित थे। स्कंद, गणेश, मणिभद्र व मातृशक्ति की भी पूजा की जाने लगी। रामायण के अनुसार भागीरथ ने शिव को प्रसन्न कर गंगा को भूतल पर लाऐ। वैदिक देवताओं के प्राकृतिक स्वरूप के स्थान पर पूर्ण मानवीकरण हो चुका था। राम को विष्णु का अवतार माना गया। उनके द्वारा असत्य पर सत्य की और अन्याय पर न्याय की विजय दिखाई गई है। राम के आदर्शों ने ही सदियों से भारतीय जीवन को गत्यात्मकता व जीवंतता प्रदान की है। रामायण में शिव–पार्वती विवाह, समुद्र मंथन द्वारा मिला विष व उसका शिवजी के द्वारा पान का कथानक मिलता है। रामायण में यज्ञ, धार्मिक अनुष्ठानों का उल्लेख है। यज्ञकुण्ड में अग्नि का आव्हान कर उसमें आहुतियाँ दी जाती थीं और देवताओं की स्तुति की जाती थी। राजसूय–अश्वमूघ आदि यज्ञों को राजा द्वारा किया जाता था। राजा की सार्वभौम सत्ता को प्रदर्शित किया जाता था। रामायण में सांस्कृतिक प्रसार की भावना परिलक्षित होती है। राम जहाँ भी गये, स्थानीय शासकों को ही सत्ता सोपते गये। विभिन्न परिस्थितियों में भी उन्हें सहनशील, चरित्रवान सुपुत्र एक आदर्श भाई, आदर्श पति, सदाचारी एवं कर्त्तव्यपरायण, वीर, साहसी तथा प्रजा का हितैषी शासक बताया है।[18]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि रामायण भारतीयों की प्रमुख साहित्यिक धरोहर है और प्राचीन भारतीय इतिहास व संस्कृति का एक प्रमुख स्रोत है। इसकी ऐतिहासिकता में संदेह नहीं किया जा सकता। विभिन्न साहित्यिक व पुरातात्विक साक्ष्यों से इसकी महत्ता का बोध होता है। अयोध्या के उत्खनन से यह स्पष्ट हो गया है, श्री रामसेतु–मार्ग को भी ऐतिहासिक माना जा चुका है। वर्तमान में राम से संबंधित विभिन्न स्थानों की खोज व शोध इतिहासकारों व पुरात्तववेत्ताओं द्वारा निरंतर जारी है। रामायण काल्पनिक कथा नहीं हैं, भारत, श्रीलंका, नेपाल आदि के साहित्य भाषा, लोक परंपरा, स्मृति चिन्ह आदि अनेक रूपों में रामायण की ऐतिहासिकता के प्रमाण मिलते हैं।

संदर्भ ग्रंथ :

1. उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय अभिलेख, प्रज्ञा प्रकाशन, पटना, 1970, पृ. 66,
2. हुएनसांग का भारत भ्रमण, इंडियन प्रेस, प्रयाग, पृ. 60
3. चतुर्वेदी गिरिजाशंकर, महाकवि कल्हण, पृ. 142–143
4. वार्डर, ए.के., भारतीय इतिहास लेखन की भूमिका, अनुवादक, जगन्नाथ अग्रवाल, हरियाणा हिन्दी ग्रंथ अकादमी, चण्डीगढ़ 1987, पृ. 5
5. गौतम एवं कमलेश शर्मा, प्राचीन भारत, जैन प्रकाशन मंदिर, 2008, जयपुर पृ. 2,
6. हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटकेचर, पृ. 503
7. पाण्डेय, विमलचंद, प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, भाग–1, पृ. 204
8. रामायण, अयोध्याकांण्ड 109, 45
9. शर्मा, कमलेश, प्राचीन भारत में राजनीतिक एवं विधिक विचार, आर.बी.एस.ई., जयपुर 2007, पृ. 70,
10. तुलसीदास, रामचरित मानस, उत्तरकाण्ड, दोहा 22
11. आचार्य श्री राम शर्मा, रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाऐं, पृ. 1–110
12. वाल्मीकीय रामायण, अयोध्याकाण्ड, प्रथम सर्ग, श्लोक 16
13. पूर्वोक्त, अयोध्याकाण्ड, श्लोक 119
14. गौतम एवं कमलेश शर्मा, प्राचीन भारत, पृ. 258,
15. तुलसीदास, रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, दोहा 22
16. बालकाण्ड – 6
17. सत्यकेतु विद्यालंकार, प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन, सरस्वती सदन, नई दिल्ली, 1994, पृ. 325,
18. कमलेश भारद्वाज, भारतीय संस्कृति के मूल आधार, पोइंटीयर प्रकाशन जयपुर, 2002, पृ. 233

पूर्व आचार्य,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

2

राम काव्य परम्परा में तुलसीदास

डॉ. नीतू शर्मा

उद्‌भावना

गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में संसार की अनित्यता जीवन की क्षणभंगुरता, भोगों में भटकने आदि का बड़ा व्यापक वर्णन हुआ है। 'विनय–पत्रिका' में इसके अनेक उपयुक्त उदाहरण देखे जा सकते हैं। स्वयं गोस्वामी जी अपने पूर्ववर्ती जीवन के प्रति प्रभु श्री राम से बड़ी ग्लानि प्रकट करते है, और बार–बार यह प्रार्थना करते हैं कि मुझे पुनः इनमें न भटकना पड़े। इसी प्रकार बाल्मीकि, अगस्त्य एवं वशिष्ठ आदि सिद्ध, ऋषियों, महर्षियों तथा मंदोदरी जैसी राक्षस–पत्नियों के द्वारा प्रभु के विराट ऐश्वर्य का बड़ा भव्य चित्रण हुआ है। गोस्वामी जी ने विनय–पत्रिका में इसी विमल विवेक के द्वारा प्रभु की स्तुतियाँ की हैं।

प्रमुख शब्द : निर्वेद, क्षणभंगुरता, अनित्यता, कर्तव्य, संस्कारगत।

प्रायः संसार की नश्वरता को देखकर मनुष्य के हृदय में वैराग्य उत्पन्न होता है। यह वैराग्य कभी स्थाई तो कभी क्षणिक होता है। इस क्षणिक वैराग्य को श्मशान वैराग्य भी कहा जाता है। ऐसी स्थिति में इसका स्थायी भाव निर्वेद होता है। कभी–कभी कोई व्यक्ति जन्मजात विवेकवान या मनस्वी होता है। उसमें संस्कारगत न्याय समाविष्ट होता है। वह प्रत्येक घटना को निर्लिप्त भाव से देखता है और तब उसमें शम स्थाई भाव वाला शांत रस प्रतिष्ठित होता है। इसे ही शैवागमियों ने 'आनन्द रस' माना है। अधिकांशतः निर्वेद प्रधान शान्ति ही बड़ी सहजता के साथ परिपाक पाता है और शम स्थायी भाव वाला बहुत ही कम। ज्ञानमार्गी संतों तथा प्रसाद जैसे कवियों के काव्य में शम स्थाई भाव वाला शांत रस स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है।

जब शांत रस का निर्वेद स्थायी भाव अपना क्षणिक प्रभाव डालता है तो मनुष्य को श्मशान वैराग्य प्राप्त होता है। यह प्रायः तीन स्थितियों (जीवन की क्षणभंगुरता को सिद्ध करने वाली घटनाओं को देखकर, भोग–निवृत्ति के बाद एवं गुरू के उपदेश को सुनकर) में उत्पन्न होता है। कुछ ही क्षणों के उपरान्त सांसारिक माया में लिप्त मानव भावों के अपार सागर तथा जीवन के क्रिया–व्यापारों में पुनः उलझ जाता है। ऐसी ही स्थितियों में उत्पन्न होने वाला शांत रस सामान्य शांत रस होता हैं, किन्तु जब निर्वेद अथवा शम के कारण हमारी जीवन–धारा सीधे–सीधे परमात्मा की ओर उन्मुख हो जाती हैं, हम संसार की वास्तविकता को समझकर परमात्मा को ही सच्चा आत्मीय मानने लग जाते हैं, तो उसे ही चिन्मय शांत रस कहा जाता है। 'नाट्य में यद्यपि शांत को शम–स्थायी की निर्विकारता के कारण स्थान नहीं दिया जाता, किन्तु रति युक्त होने के कारण शान्त और शान्त भक्ति रस में भेद है।'[1] इस रस में ज्ञान की प्रधानता होती है। यद्यपि ज्ञानदशा रस में बहुत अधिक सहायक नहीं है, तो भी परमात्मा की ओर उन्मुख होने के कारण वह परम सन्तोष (परमानन्द) को जन्म देता है।

जीवन की क्षणभंगुरता और अपनी प्रिय वस्तुओं की अनित्यता को देखकर मनुष्य के मन में कुछ समय के लिए इन सबसे विराग उत्पन्न हो जाता है। संसार की अनित्यता एवं दुःखमयता से उत्पन्न होने वाले स्थायी भाव को निर्वेद कहते हैं।[2]

(अ) शम : शम की परिभाषा इस प्रकार हैः–

न यत्र दुःख न सुख न चिन्ता न द्वेष रागौ न च काचिदिच्छा।
रसः स शान्तः कथितौ मुनीन्द्रै, सर्वेषु भावेषु शमः प्रधान।।[3]

जिसमें न दुःख हो, न सुख हो, न कोई चिन्ता हो, न राग–द्वेष हो और न कोई इच्छा ही शेष हो, उसे मुनि शान्त रस कहते हैं। 'काव्य–प्रदीप' में शम का लक्षण इस प्रकार दिया गया है–'शमो निरीहावस्थायामानन्दः। स्वात्म विश्रामादिति।' अर्थात् 'निरीहावस्था में आत्म–विश्रान्ति जन्य आनन्द का नाम शम हैं।

जीवन की क्षणभंगुरता, संसार और भोगों की अनित्यता आदि को देखकर प्रायः सभी के मन में

निर्वेद उत्पन्न होता है, किन्तु उसे प्रभु के प्रति समर्पण तक ले जाने की शक्ति केवल महान भक्त में ही होती है। मनुष्य जब इन्द्रिय लिप्सा में अनेक उचित–अनुचित कर्म करता चला जाता है, और इन्द्रिय सुख को ही जीवन का वास्तविक सुख समझने लगता हैं, तब वह माया लिप्त मनुष्य प्रायः दुख के जाल में ही जकड़ता चला जाता है। मनुष्य का स्वभाव ही है– ठोकरें खाकर संभलना। इन्हीं संभले हुओं में वाल्मीकि और तुलसी भी आते हैं। किन्तु जन सामान्य तो ठोकरें खा–खाकर तमाशे देखता रहता हैं, और जीवन भर नहीं सुधर पाता। मोह, माया, लोभ, अहंकार, काम, मद, मत्सर हैं तो नरक के पंथ अवश्य, किन्तु सामान्य जन तो इन्हीं में भटक–भटक कर जीवन काटता रहता है। इन्हीं अनुभूतियों के बीच यदि उसे कुछ दिव्य अथवा अलौकिक अनुभूति हो अथवा हो अथवा करा दी जाए, तो सामान्य जन का जीवन भी सुफुल हो जाता है। संभवतः गोस्वामी जी ने इसी लक्ष्य को सामने रखकर अपने साहित्य की रचना की। कलिमल ग्रसित मानवों को शब्दों (वर्णानाम्) के द्वारा चिर विश्रान्ति तक ले जाना गोस्वामी जी चरम लक्ष्य है। इसीलिए उन्होंने मानस के सातों काण्डों के अन्त में–इति श्रीमद्राराचरित मानसे सकल कलि कलुष विध्वंसने[4] का अभिप्राय ही है– काम क्रोधादि माया कटक से ग्रसित मानव को उसकी कथित भूलों का स्मरण कराते हुए उसे परमात्मा की ओर उन्मुख करना। यदि वे केवल भूलों पर पश्चाताप करते रहते तो यह केवल सामान्य कोटि का निर्वेद होता किन्तु उन्होंने इसी काम के बीच से राम का मार्ग प्राप्त किया। यही इस निर्वेद की चिन्मयता है।

पश्चाताप निर्वेद का सबसे प्रमुख लक्षण है और संभवतः इसके बिना चिन्मय भाव का बोध ही असंभव है। पहले व्यक्ति अपने पूर्वकृत कर्मों (कुकर्मों) के प्रति पश्चाताप ही प्रकट करता है, शरण में जाता है। अपने दोषों को पूरी ईमानदारी से स्वीकार किए बिना न तो समर्पण संभव है न सुख ही और इनके बिना भक्ति तो संभव है ही नंहीं। गोस्वामी जी बड़ी विनम्रता के साथ अपनी माया जनित स्थितियों को स्वीकार करते हैं। वे संकल्प लेते हैं कि अब तब जो आयु व्यर्थ ही नष्ट हो गयी हैं, उसे अब नष्ट नहीं होने दूँगा। श्री राम की कृपा से मैं संसार की माया–रात्रि से जग गया हूँ। अब जागने पर फिर माया के फंदे में नहीं फसूँगा। जब तक मैं इन्द्रियों के वशीभूत था तब तक उन्होंने मुझे मनमाना नाच नचा कर मेरी बड़ी हँसी उड़ाई, परन्तु अब स्वतन्त्र होने पर यानी मन, इन्द्रियों को जीत लेने पर उनसे अपनी हँसी नहीं कराऊँगा। अब तो अपनी मनरूपी भ्रमर को प्रण करके श्रीराम के चरण–कमलों में लगा दूँगा–

अबलौं नसानी, अब न नसैहौं।
राम कृपा भव–निसासिरानी, जागे फिरी न डसैहौं।
पर बस जानि हँस्यो इन इन्द्रिन, निज बस होई न हँसैहौं।
मन मधुकर पनकै तुलसी, रघुपति–पद–कमल बसैहौं।।[5]

अपने पापों को स्वीकारते हुये भी उनका यह विश्वास कि प्रभु तो पतितपावन हैं अवश्य ही मुझे अपनी शरण में ले लेंगे, पूरे पद को चिन्मयता प्रदान कर देता है। संसार की नश्वरता मन की मूढ़ता[9] सम्पूर्ण जीवन की भटकन के होते हुए भी मन की हठवादिता आदि का वर्णन करने के साथ ही गोस्वामी जी ने भक्त की आदर्श जीवन–शैली प्राप्त करने ही उत्कट अभिलाषा बड़ी ही विनम्रता के साथ प्रस्तुत की है। ऐसा लगता है कि जैसे वे विमल वैराग्य की पृष्ठभूमि तैयार कर रहे हैं, एक तरफ मन की चंचलता, देह जनित चिन्ता एवं दुर्बलताओं की ओर संकेत हैं तो दूसरी ओर उससे मुक्ति की आकांक्षा। संत स्वभाव प्राप्त करना कोई साधारण उपलब्धि तो हैं नहीं क्योंकि इस स्वभाव के प्राप्त होने के उपरान्त प्रभु कृपा की प्राप्ति अवश्यंभावी हो जाती है–

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ–कृपालु–कृपातें संत–सुभाव गहौंगो।
जथालाथ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
परूष बचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
विगत मान, सम शीतल मन, पर–गुन नहिं दोष कहौंगो।
परिहरि देह–जनित चिंता, दुख सुख समबुद्धि सहौंगों।
तुलसीदास प्रभु यहि पथ रहि अबिचल हरि भगति लहौंगो।[6]

मन के द्वारा वे अपने मूल सुखस्वरूप परमात्मा को भुलाकर दिन–रात इन्द्रियों के आकर्षण से खिंचकर विषयों में भटकने की प्रवृत्ति को धिक्कारते हैं, विषय संग के कारण असह्य कष्टों का सहन

करने की प्रवृत्ति की निरर्थकता को सिद्ध करते हैं, विभिन्न जन्मों में नाना प्रकार के कर्मों के कारण चित्त पर पड़े कीचड़ को साफ करने के लिए विवेक रूपी जल प्राप्त करने की कामना करते हैं–

कबहूँ मन विश्राम न मान्यो।
निसि दिन भ्रमत बिसारि सहज सुख, जहँ तहँ इन्द्रिय तान्यो।
जदपि विषय–सँग सह्यो दुसह दुख, विषम जाल अरूझान्यो।
तदपि न तजत मूढ़ ममता बस, जानतहूँ नहि जान्यो।
जनम अनेक किए नाना बिधि, करम कीच चित सान्यो।
होई न बिमल विवेक–नीर बिनु, बेद पुरान बखान्यो।
निज हित नाथ पिता गुरू हरिसों हरषि हृदै नहिं आन्यो।
तुलसीदास कब तृषा जाय सर खनतहि जनम सिरान्यो।

उसी मूर्ख मन को समझाते हुए तुलसीदास कहते हैं कि हरि के चरणों से विमुख होकर किसी ने भी सुख प्राप्त नहीं किया है। हे दुष्ट इस बात को शीघ्र ही समझ ले। जीव नाम प्राप्त होने के आदि से ही इसकी अस्थिरता एवं वासना, लोभ, मोह आदि के चक्करों में पड़कर उसे नित्य उसी में रमण करने की प्रवृत्ति को आत्मघाती बताते हैं। जिससे मुक्ति केवल संसार के नाथ ही दिला सकते हैं। अस्तु वे भगवान के शरणागत होकर अभय चाहते हैं। संसार को सत्, नित्य, पवित्र और सुखमय मानने का भ्रम दूर कर, करूणानिधान के गुणों का विचार कर उन्हीं के चरण कमल का स्तवन करते हैं, क्योंकि वे जान चुके हैं कि श्रीरामचन्द्र के चरणों को छोड़कर पापरूपी राक्षसों का नाश नहीं हो सकता। श्रीरामचन्द्र के चरण–कमलों में विशुद्ध (निष्काम) प्रेम का होना ही जीवन का परमफल है। सामान्यतया मानव विष को सुधा समझ लेता है–

नर तनु पाई विषय मन देहीं।
पलटि सुधा से सठ विष लेहीं।[7]

जो नर–तन प्राप्त करके भी विषयों में मन लगाते हैं, वे अमृत के बदले में जहर लेते हैं। ऐसे लोगों को बुद्धिमान कौन कहेगा? जो पारसमणि खोकर घुँघची लेते हैं–'ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई।' या पवित्र गंगा का जल छोड़कर ओस कणों की आशा करते हैं–'परिहरि राम भगति सुरसरिता आस करत ओस कन की।'[8]

निर्वेद का क्षेत्र अति व्यापक है। पाप से ग्रस्त रहने से, माया, मोह में फँसे होने, कर्तव्य बोध का उपदेश देने से मनुष्य के जीवन में ऐसे भी क्षण आते हैं जब उसे इन भूलों के प्रति ग्लानि होने लगती है और ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे उसने अपना पूर्व जीवन व्यर्थ ही काट लिया हो। यहाँ तक उसे आभास होता है कि उसने अपने ऊपर पापों, कुकर्मों का बोझ लादा हो। इस बोझ को कोई उतार नहीं सकता, केवल परमात्मा ही उसे उतारने में समर्थ है। उसकी शरण में कातर भाव से समर्पित होने पर ही बोझ से मुक्ति संभव है।

तुलसीदास जी को नारी आकर्षण की बड़ी गहन अनुभूति है। वे नारि को विष्णु की प्रकट माया मानते हैं–

'नारि विष्णु माया प्रकट और यह नारि अविद्या माया है। अविद्या मनुष्य को कर्तव्य पथ से भटकाती तो है ही उसे परमात्मा के प्रति विस्मृति से भी भर देती है। सुग्रीव आदि कुछ ऐसे पात्र हैं जो स्वभावतः कामी हैं, किन्तु उन्हें अपनी भूल का ज्ञान होता है और श्रीराम के सम्मुख वे अपनी माया की प्रबलता को स्पष्ट स्वीकार करते हैं–

अतिसय प्रबल देव तव माया।
छूटइ राम करहु जौं दाया।
विषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी।
मैं पाँवर पसु कपि अति कामी।
नारि नयन सर जाहि न लागा।
घोर क्रोध तम निसि जो जागा।
लोभ पाँस जो गर न बँधाया।
सो नर तुम्ह समान रघुराया।
यह गुन साधन ते नहिं होई।
तुम्हारी कृपा पाव कोई कोई।[9]

सुग्रीव ने अपनी भटकन के पीछे दार्शनिक कारण प्रस्तुत कर दिया। यहाँ तक तो यह सामान्य निर्वेद था किन्तु राम के प्रति समर्पण से यह चिन्मयता से यह उत्पन्न हो गया। अस्तु अपराधों का बोध, उनकी स्वीकारोक्ति, पश्चाताप, विनम्रतापूर्वक प्रभु के प्रति समर्पण और प्रभु की अनुपम कृपा की अनुभूमि निर्वेदमूलक चिन्मय के क्रमिक मार्ग हैं। जिनके द्वारा भी व्यक्ति ईश्वर की अक्षय सत्ता की अनुभूति कर सकता है और अपने मन के कलुष जिसे गोस्वामी जी ने 'सकल कलि

कलुष' कहा हैं, का विध्वंश कर सकता है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे सामान्यजन की स्वाभाविक मनोवृत्ति को परिष्कृत करने के लिए गोस्वामी जी ने यह एक सरल मार्ग बनाया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि उन्होंने निर्वेद के क्षणिक या श्मशान वैराग्य को भक्ति को साधक भाव बना दिया।

शम स्थायी भाव पर आधारित चिन्मय

शम स्थायी भाव का आलम्बन यदि चिन्मय होता है तो उसका सम्पूर्ण ऐश्वर्य भक्त को आभासित होने लगता है। तुलसी साहित्य में यह प्रायः तीन स्थितियों को देखा जा सकता हैं–

1. राग–द्वेष मुक्त सामान्य मनःस्थिति में।
2. वैराग्य अथवा विवेक विशिष्ट मनःस्थिति।
3. प्रभु के वैराट्य के बोध में।

वस्तुतः सुख–दुख, चिन्ता, राग–द्वेष और इच्छाहीन मनःस्थिति सामान्य जन की मनःस्थिति हो ही नहीं सकती। सामान्य व्यक्ति तो इन्हीं मनोभावों के सहारे अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करता है, किंतु शम स्थायी भाव कोई साधारण स्थायी भाव तो है नहीं, फिर उसका चिन्मय बोध तो और भी अलौकिक है। उसी तरह जैसे–परमात्मा का स्वरूप। किन्तु सगुण भक्ति इसी अगम, अगोचर, अपार परमात्मा को शरीर और गुणों के बन्धन में बाँध मानव के बीच में ला खड़ा करती है। वह परमात्मा यद्यपि सांसारिक बन्धनों से केवल मुक्त ही नहीं हैं अपितु उन्हें काटने वाला भी है तथा इसी सांसारिकता के बन्धन में हुआ प्रतीत होता है। अर्थात् एक ओर वह ब्रह्य है तो दूसरी ओर मानव। ब्रह्य का अनुभव तो किया जा सकता है किंतु उसका वर्णन नहीं। वर्णन का विषय तो मानव है, उसका मन है उसकी इच्छा आकांक्षाएँ हैं, क्रिया व्यापार हैं। गोस्वामी जी ने ब्रह्य की मानवीय लीलाओं में भटककर उसे साधारण मानव–मात्र न समझ लें, इसलिए इसलिए वे पदे–पदे ब्रह्यत्व का संकेत करते चलते हैं। जहाँ राम की मानवीय लीला सख्य, मधुर, वत्सल, हास्य, करूण, वीर आदि रसों की अनुभूति कराती हैं, वही उसके ब्रह्यत्व का संकेत हमें शम स्थायी भाव के धरातल पर खड़ा कर देती है। प्रभु के विराट ऐश्वर्य, उसके सर्वव्यापी स्वरूप, अखिल ब्रह्यांडनायक होने का बोध, उसका सर्वज्ञत्व आदि विशेषताएँ शम का आधार प्रदान करती हैं। यही शम मानों राम को परम ब्रह्य, अखिल ब्रह्यांड नायक भक्तवत्सल की गरिमा प्रदान करता है।

शम की जिन तीन स्थितियों का ऊपर संकेत किया गया हैं, तुलसी साहित्य में उसकी स्थितियों का यहाँ विचार किया जा रहा है–

यद्यपि सामान्य मनुष्य रागादि मुक्त नहीं हैं, किन्तु जब उसे निर्वेद प्राप्त होता हैं वह अपनी भूलों का प्रायश्चित करना चाहता है, तो वह पहले ईश्वर के प्रति समर्पित होता हैं और बाद में रागादि मुक्त जीवन की आकांक्षा प्रकट करता है। वह राग–द्वेष की इच्छा, काम–क्रोध आदि से उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों को भोग चुका होता है, इसलिए उनके आकर्षक मिथ्या स्वरूप का उसे ज्ञान हो जाता है, उससे वितृष्णा हो जाती है। उसे यह भी बोध हो जाता है कि जीवन का वास्तविक सुख संत स्वभाव ग्रहण करने, विषय वासना से मुक्त होने एवं प्रभु के प्रति समर्पित होने से ही संभव है–

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ–कृपालु कृपातें, संत–सुभाव गहौंगो।।
जथालाम संतोष सदा, काहू सो कछु न चहौंगो।
पर–हित–निरत निरंतर, मन क्रम बचन नेम निबहौंगो।
परूष बचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
विगत मान सम सीतल मन, पर–गुन नहिं दोष कहौंगो।
तुलसीदास प्रभु यहि पथ रहि अबिचल हरि समबुद्धि सहौंगो।
तुलसीदास प्रभु यहि पथ रहि अबिचल हरि भगति लहौंगो।[10]

गोस्वामी जी का मत है यदि हमारा मन विकारों (पहले अपनाई गई बुराईयों) को छोड़ दे तो भ्रम दुःख अथवा शोक उसे व्याप ही नहीं सकते। स्वर्ग–नरक, चर–अचर सभी कुछ मन में ही रहते हैं। इसलिए जब श्री रघुनाथ की कृपा होगी, हमारा मन निर्मल हो जाएगा, तो जगत् का वास्तविक सत्य परमात्मा धीरे–धीरे समझ में आ जाएगा–

जौ निज मन परिहरै बिकारा।
तौ कत द्वैत–जनित संसृति–दुख संसय सोक अपारा।
सत्रु, मित्र, मध्यस्थ, तीनि ये, मन कीन्हें बरिआई।
त्यागन, गहन, उपेच्छनीय, अहि हाटक तृन की नाई।
असन, बसन, पसु बस्तु बिबिध विधि सब मन महि रह जैसे।
सरग, नरक, चर–अचर लोक बहु, बसत मध्य मन

तैसे।।

बिटप मध्य पुतरिका, सूत महँ कंचुकि बिनहि बनाये।
मन महँ तथा लीन नाना तनु, प्रगटत अवसर पाये।
रघुपति–भगति–बारि–छालित–चित, बिनु प्रयास ही सूझै।
तुलसीदास कह चिद–बिलास जग बूझत–बूझत बूझै।।[11]

संभवतः यह संत स्वभाव ग्रहण कर लेने का प्रतिफल है। अर्थात क्रम से परमात्म तत्व बोध की प्रक्रिया है।

जनक, वशिष्ठ, वाल्मीकि, अत्रि, अगस्त्य, सुतीक्ष्ण, शिव, ब्रह्मा, सनकादि ऋषि आदि अनेक पात्र विमल विवेक वैराग्य से संयुक्त अति विशिष्ट तत्व ज्ञानी हैं, किन्तु इनमें से वशिष्ठ और जनक का परिवारों से सम्बन्ध होने के कारण उनका विवेकवान स्वरूप मानवीय भावनाओं से समन्वित दिखाई देता है। ये सभी प्रभु स्वरूप से परिचित ब्रह्मज्ञानी हैं। इनमें से कुछ वन के आश्रमों में निवास करने वाले बीतरागी, कुछ आदि देव और कुछ गृहसी हैं। इनका विमल विवेक सहज संस्कारगत है क्योंकि इनकी पारिवारिक और सामाजिक पृष्ठभूमि अति विवेक समुन्नत है। इन्होंने अनेक स्थलों पर प्रभु के प्रति संभाषण अथवा स्तुतियों में उनके परम ऐश्वर्य का वर्णन किया है।

वाल्मीकि जी के इस कथन से श्रीराम के विराट ऐश्वर्य, सामर्थ्य एवं उनकी सर्वव्यापकता का सुन्दर वर्णन हुआ है–

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रूख पाइ कृपा निधान की।
जो सहस सीसु अहीसु महिधरू लखनु सचराचर धानी।
सुरकाज धीर नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनी।[12]

विमल विवेक की सबसे प्रमुख विशेषता है– प्रभु की कृपा शक्ति का अनुभव होना, क्योंकि इस अनुभव के बिना अक्षय आनन्द की प्राप्ति सम्भव नहीं है। एक बार जिसे इस कृपा शांति का अनुभव हो जाता हैं, वह जीवन भर इसी के सहारे अपनी सम्पूर्ण बाधाओं को पार करते हुए निरन्तर आनन्दमग्न रहता है। गोस्वामी जी ने श्री राम की कृपा शक्ति को बड़ी गहराई के साथ अनुभव किया है और वे निरन्तर इस शक्ति का बखान करते रहते हैं। गोस्वामी जी अपने कथन को पुष्ट करने के लिए अनेक पौरणिक सन्दर्भ भी प्रस्तुत करते जाते हैं। उनके इस विमल विवेक में परोपकार, संयम, द्वैत, भ्रम, भय, शोक आदि को काटने के लिए श्रीराम भजन का सहारा, संसारसागर से पार होने के लिए भी उन्हीं का सहारा, उन्हीं को सबसे बड़ा गुरू, पिता, सखा आदि मानना जैसे साधन सम्मिलित है–

काजु कहा नरतनु धरि सारयो।
पर–उपकार सार श्रुति को जो, सो धोखेहु न बिचारयो।
द्वैत–मूल, भय–सूल, सोक–फल, भवतरू टरै न टार्‌यो।
रामभजन–तीछन कुठार लै सो नहिं काट निवार्‌यो।
संसय–सिंधु राम बोहित भजि निज आत्मा न तार्‌यो।
जनम अनेक विवेकहीन बहु जोति भ्रमत नहिं हार्‌यो।
देखि आनि की सहज संपदा द्वेष–अनल मन–जर्‌यो।
सम, दम, दया, दीन–पालन, सीतल हिय हरि न सँभार्‌यो।
प्रभु, गुरू, पिता सखा रघुपति हैं, मन क्रम बचन बिसार्‌यो।
तुलसीदास यहि आस, सरन राखिहि जेहि गीध उधार्‌यौ।[13]

वे श्रीराम की कृपा के मार्ग को शिवाजी द्वारा बताया हुआ कल्याणकारी मार्ग मानते हैं और श्री हरि भजन को समस्त विकार बाधाओं को नाश करने वाला तथा समस्त कामनाओं को देने वाला कृल्पवृक्ष मानते हैं, किन्तु प्रभु के प्रति सर्वभावेन समर्पण के साथ काम क्रोधादि को नष्ट करने का निरन्तर प्रयत्न करते रहने पर बल भी देते हैं। वे अपने समस्त क्रिया–व्यापारों को हरि सेवा के निमित्व अर्पित करने को ही विवेक की सर्वोत्तम स्थिति स्वीकार करते हैं–

जो मन भज्यो चहै हरि–सुरतरू।
तो तज बिषय–बिकार, सारभज, अजूहँ जो मैं कहौं सोइ करू।
सम, संतोष, बिचार बिमल अति, सतसंगति, ये चारि दृढ़ करि धरू।
काम–क्रोध अरू लोभ–मोह, राग–द्वैष निसेष करि परिहरू।।
श्रवन–कथा, मुखनाम, हृदय हरि, सिर प्रनाम, सेवा कर अनुसरू।
नयननि निरखि कृपा–समुद्र हरि अग–जग–रूप भूप

सीताबरू।।
इहै भगाति, वैराग्य–ग्यान यह, हरि–तोषण यह सुभ ब्रत आचरू।
तुलसीदास सिव–मत मारग यहि चलत सदा सपनेहुँ नाहिंन डरू।।[14]

गोस्वामी जी सगुणोपासक हैं और उनका सम्पूर्ण काव्य लोकरंजक भी है और लोकशिक्षक भी। उनका शममूलक शांत निरूपण जन सामान्य को भी चिन्तन और भावना की चरम स्थिति तक पहुँचने का सुगम एवं स्वाभाविक साधन हैं, किन्तु उनके इस कोटि के समस्त पात्र मानवीय संवेदनाओं से पूरी तरह से संयुक्त है। अस्तु इनके शांत निरूपण में भक्त की सी मार्मिकता है। यही इनके शांत चिन्मय की सबसे बड़ी उपलब्धि भी है।

प्रभु के वैराट्य बोध में

मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम का सम्पूर्ण आचरण मानवोचित होते हुए भी उनका व्यक्तित्व एवं चरित्र दिव्य एवं अलौकिक ही है। इसी मानवीयता एवं दिव्यता के समन्वय से उनका लीलामय जीवन उभरता चला जाता है। सामान्य जीवन व्यापारों के बीच–बीच में अलौकिक घटनाओं को समावेश होने से पाठक उन्हें चिन्मय आलम्बन के रूप में आत्मसात करता है। कहीं–कहीं तुलसीदास स्वयं स्पष्ट निर्देश देते हुए कहते हैं कि राम की मानवोचित लीलाओं से हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ये सामान्य मानव हैं अपितु सदैव यह ध्यान रखना चाहिए कि वे साक्षात परात्पर परब्रह्म हैं–

लव निमेष, महुँ भुवन निकाया।
रचइ जासु अनुसासन माया।
भगति हेतु सोइ दीन दयाला।
चितवत चकित धनुष मखसाला।
जासु त्रास डर कहुँ डर होई।
भजन प्रभाव देखावत सोई।
पूरन काम राम सुखरासी।
मनुज चरित कर अज अबिनासी।[15]

ब्रह्मा, शिव, सनकादिक, वशिष्ठ, अगस्त, अत्रि, वाल्मीकि आदि प्रभु केविराट व्यक्तित्व के आस्थावान ज्ञाता हैं, किन्तु मानस के काकभुशुण्डि और मन्दोदरी जैसे पात्र भी श्रीराम को साधारण मानव न मानकर उन्हें परम, विराट पुरूष के रूप में स्वीकार करते हैं। मन्दोदरी तो अपने पति को श्रीराम के विराट व्यक्तित्व का व्यापक परिचय करा देती हैं–

बिस्वरूप रघुबंस मनि, करहु बचन बिस्वासु।
लोक कल्पना बेदकर अंग–अंग प्रति जासु।।
पद पाताल सीस अज धामा।
अपर लोक अँग–अँग विश्रामा।
भ्रकुटि बिलास भयंकर काला।
नयन दिवाकर कच धन माला।
जासु घ्रान अस्विनी कुमारा।
निसि अरू दिवस निमेष अपारा।
श्रवन दिसा दस बेद बखानी।
मारूत स्वास निगम निज बानी।
अधर लोभ जम दसन कराला।
माया हास बाहु दिगपाला।
आनन अनल अंबुपति जीहा।
उतपति पालन प्रलय समीहा।
रोम राजि अष्टादास भारा।
अस्थि सैल सरिता नस जारा।
उदर उदधि अधगो जातना।
जगमय प्रभु का बहु कल्पना।
अहंकार शिव बुद्धि अज, मन ससि चित्त महान।
मनुज बास सचराचर, रूप राम भगवान।।[16]

मन्दोदरी का वैराट्य बोध ऋग्वेद के पुरूष सूक्त की विस्तृत व्याख्या प्रतीत होता है। ऋग्वेद के इन मंत्रों में–

चन्द्रमा मनसो जातश चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादि–द्रश्चाग्निश्च प्राणादवायु रजायत।

(उस प्रजापति रूप पुरूष के मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, मुख से इन्द्र और अग्नि उत्पन्न हुए और प्राण से वायु उत्पन्न हुआ।)

नाभ्यां आसीदनरिक्षं शीर्ष्णों द्यौः समर्वततं।
पदभ्यां भुर्मिदिशः श्रोत्रात् तथा लोकाँ अकल्पयन।

(उस प्रजापति रूप परमपुरूष की नाभि से अन्तरिक्ष लोक बना, सिर से द्युलोक उत्पन्न हुआ, दोनों पैरों से भूमि उत्पन्न हुई और कानों से दिशाएँ उत्पन्न हुई। इस प्रकार उस पुरूष से देवताओं ने लोकों की रचना की।)

विराट भगवान के प्रमुख अंगो से प्रमुख देवताओं एवं लोकों का उत्पन्न होना सिद्ध किया गया है। जबकि मंदोदरी की व्याख्या अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत है। तुलसी के काव्य में अनेक स्तुतियाँ हैं। इन स्तुतियों में उनके विराट व्यक्तित्व के साथ उनकी करूणामयता, भक्तवत्सलता एवं कृपा शक्ति का बड़ा सुन्दर विवेचन हुआ है। शिव जी श्रीराम के सेवक, स्वामि, सखा सब कुछ हैं। उनके जैसे शम भाव वाला कोई भी देव नहीं है।

सम्भवतः तत्व ज्ञानी भी नहीं। इसीलिए उनके–

उमा दारू जोसित की नाईं।
सबहिं नवावत राम गोसाईं।
उमा कहहुँ मैं अनुभव अपना।
सत हरि भजन जगत सब सपना।

आदि वचनों मं श्रीराम का विराट् व्यक्तित्व एवं ऐश्वर्य का लोक व्यापी स्वरूप दिखाई देता हैं। 'मानस' की यह स्तुति अत्यधिक लोकप्रिय है–

जय राम रमारमनं।
भव ताप भयाकुल पाहि जनं।
अवधेश सुरेश रमेस बिभो।
सरनागत मागत पाहि प्रभो।
दससीस बिनासन बीस भुजा।
कृत दूरि भहा महि भूरि रूजा।
रजनीचर बृंग पतंग रहे।
सर पावक तेज प्रचंड दहे।[17]

इसके अतिरिक्त ब्रह्मा, वेदों अत्रि, बालि, अहिल्या, काक–भुशुण्डि, शबरी, शिव, जटायु, आदि द्वारा की गई स्तुतियाँ श्रीराम के विराट व्यक्तित्व के साथ उनकी भक्त वत्सलता, सामर्थ्य एवं कृपाशीलता का परिचय देती हैं। तुलसीदास जी ने शिव, हनुमान आदि के भी विराट एवं चिन्मय स्वरूप का वर्णन किया है। उनका रूद्राष्टक शिव के विराट व्यक्तित्व एवं उनके लोकप्रसिद्ध महामंत्र जैसा है।

नमामीशमीशान निर्वाण रूपं।
विभु व्यापकं ब्रह्मवेद स्वरूपं।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं।
चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं।
निराकारमोंकारमूलं तुरीय।
गिरा ग्यान गोतीत मीशं गिरीशं।।
करालं महाकाल कालं कृपांल।
गुणासार संसार पारं नतोहं।
तुषाराद्रि संकाश गौरं।
मनोभूत कोटि प्रभा श्री शरीरं।
स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारू गंगा।
लसद्भालबालेन्दु कंठे भुजंगा।
चलत्कुंडल भ्रू सुनेत्रं विशालं।
प्रसन्नानमं नीलकंठ दयालं।
मृगाधीश चर्माम्बरं मुण्डमालं।
प्रिंय शंकर सर्वनाथं भजामि।
प्रचंड़ं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं।
अखंड़ं अजं भानुकोटिप्रकाशं।
त्रयः शूल निमूलनं शूल पाणि।
भजेऽहं भवानी पतिं भाव गम्यं।
कलातीत कल्याणं कल्पान्तकारी।
सदा सज्जनानन्द दादा पुरारी।
चिदानहं संदोह मोहा पहारी।
प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्म धारी।
न यावद् उमानाथ पादारविन्दं।
भजंतीह लोके परे वा नारायणां।
न तावंत्सुख शान्ति सन्तापनाशं।
प्रसीद प्रभो सर्वभूताधि वासं।
न जानामि योगं जपं नैव पूजां।
नताऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यं।
जरा जन्म दुःखौद्य तातप्यमानं।
प्रभोपाहि आपन्नमामीश शंभों।[18]

हनुमान जी यद्यपि सेवाधर्म के श्रेष्ठ आदर्श हैं, तो भी गोस्वामी जी ने उनके जिस विराट व्यक्तित्व का स्तवन किया है वह उनके साक्षात ब्रह्मत्व का परिचायक हैं। वे साक्षात् शिव के अवतार हैं। सर्व समर्थ, सर्वज्ञ एवं लोकरक्षक हैं, भक्त वाँछा कल्परू, शरणागत वत्सल एवं परम कृपामूर्ति हैं।

यद्यपि गोस्वामी जी ने श्रीराम, शिव, हनुमान के परम ऐश्वर्यवान विराट व्यक्तित्व का बारम्बार स्तवन किया हैं तो उन्होंने भगवती सीता के परम ऐश्वर्य एवं सामर्थ्य को नमन भी किया है।

उद्भव स्थिति संहारकारिणीम् क्लेश हारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं राम वल्लभाम्।।

वास्तव में गोस्वामी जी की समन्वय दृष्टि इतनी व्यापक है कि उन्हें सम्पूर्ण संसार में सीताराम की व्याप्ति दिखाई देती है। 'विश्वरूप रघुबंसमणि' तथा 'सीयराम मय सब जग जानी' कहने का यही अभिप्राय है। गोस्वामी ही ब्रह्म के वैराट्य का सम्पूर्ण अनुभव जो वस्तुतः ज्ञान का विष है, उसे भावनात्मक स्तर पर स्वीकार करते हुए सहज व्यवहारिक स्वरूप प्रदान करते हैं। यद्यपि उन्होंने 'मैं तोहि अब जान्यो संसार तथा रज्जौयथाहेर्भ्रमः कहकर संसार की नश्वरता का वर्णन करते हैं। किन्तु, यह वर्णन निर्वेदमूलक हैं और प्रवृत्तिमार्गी की प्रकृति के अनुकूल नहीं हैं। तुलसीदास जी ने इसीलिए धर्म के निषेध स्वरूप के स्थान पर विधि स्वरूप को अधिक अंगीकार किया है। इसलिए उनका–

'सीयराम मय सब जगु जानी।
करहुँ प्रनाम जोरि पानी।'

का कथन ब्रह्म के वैराट्य का बोधक भी हैं, संसार को ब्रह्ममय निरूपित करने वाला भी और भी अधिक

व्यवहारिक भी।

विभावादि की दृष्टि से निर्वेद अथवा शम स्थायी भाव वाले शांत के अनेक श्रेष्ठ उदाहरण तुलसी के काव्य में हैं। जहाँ कहीं इनके निरूपण का विवेचन किया गया हैं, वहाँ प्रायः आलम्बन अथवा आश्रय की चिन्मयता ही प्रमुख हैं। निर्वेद में नश्वर संसार अथवा व्यर्थ गया विगत जीवन आलम्बन होता है और पश्चाताप पूर्ण हृदय आश्रय होता है। पग–पग पर प्राप्त होने वाली कठिनाइयाँ झेलता हुआ मायाग्रस्त मानव मूल लक्ष्य से सर्वथा विस्मृत हो पाप पर पाप करता चला जाता है, बाद में यही स्मृतियाँ उद्दीपन का कार्य करती है। पश्चाताप के शब्द, आत्मस्वीकृति, रोमांच, अश्रु आदि अनुभाव तथा चिन्ता, शोक, ग्लानि, शंका, हर्ष आदि संचारी भाव से पुष्ट होता हुआ वह रस ग्रहण करता है। विनय–पत्रिका के इस प्रकार के अधिकांश पद सहृदयों के हृदय में भी ऐसी ही रसानुभूति कराते हैं। चूँकि ऐसे पदों में पश्चाताप् के साथ ही प्रभु–चरण–शरण की आकाँक्षा भी निहीत रहती हैं, अतः ये भक्ति से भावित भी हो जाते हैं।

शम स्थायी भाव प्रधान स्थलों में प्रभु के सर्वव्यापी विराट ऐश्वर्य का वर्णन होता है। अस्तु वह परमात्मा ही आलम्बन और उसकी व्यापकता का अनुभव कराने वाला आश्रय होता है। ब्रह्मा जी प्रभु के ऐश्वर्य का साक्षात्कार करने वाले (स्वयं भी) आदि देव हैं। ये परम ज्ञानी एवं परम भावुक हैं। अस्तु इनकी स्तुति में शम स्थायी भाव वाले 'शांत–चिन्मय' का सुन्दर उदाहरण मिलता है–

गुन ग्यान निधान अमान अजं।
नित राम नमामि बिभुं बिरजं।
भुजदंड प्रचंड प्रताप बलं।
खल बृंद निकंद महा कुसलं।
बिनु कारन दीन दयाल हितं।
छवि धाम नमामि रमा सहितं।
भव तारन कारन परं।
मन संभव दारून दोष हरं।
सर चाप मनोहर त्रोन धरं।
जलजारून लोचन भूप बरं।
सुख मंदिर सुंदर श्रीरमनं।
मद भार, मुधा ममता समनं।
अनवद्य अखंड न गोचर गो।
सबरूप सदा सब होई नगो।
इति बेद बंदति न दंत कथा।
रवि आतप भिन्नम भिन्न जथा।[19]

काव्य के रसानुभूति वाले स्थलों में प्रायः अनुभाव अथवा संचारी भावों का स्पष्ट विवरण कम ही मिलता है किन्तु ऐसे स्थलों में हमें इनकी कल्पना करनी पड़ती है। संचारियों की तो बहुत अधिक। किन्तु यहाँ, चतुरानन को अत्यधिक प्रेम पुलकित दिखाया गया है–

प्रेम पुलक अति गत। श्रीराम ने अभी–अभी रावण जैसे दुष्ट का संहार कर महान लोक कल्याणकारी कार्य किया है। अतः यह सम्पूर्ण पृष्ठभूमि उद्दीपन का कार्य करती है। पूरी रामकथा अथवा भगवान् का विराट ऐश्वर्यवान विग्रह अथवा उनके स्वरूप, कृपा करूणा आदि का बोध चिन्मय है। इसलिए आज भी सामान्य श्रोता के हृदय में यह रस तुरन्त जाग्रत हो जाता है। इसी प्रकार अन्य उदाहरणों में समझ सकते हैं।

वास्तव में शांत चिन्मय में ज्ञान की प्रधनता होती हैं किन्तु यह ज्ञान माया लिप्त मानव को उसकी भूलों से परिचित कराते हुए एक ओर उसके प्रायश्चित का मार्ग बताता है तो दूसरी ओर ब्रह्य की वास्तविकता का परिचय कराते हुए उसके विराट व्यक्तित्व, अनंत ऐश्वर्य तथा अनंत कृपामयता का व्याख्यान भी करता है। इस प्रकार ज्ञान 'भक्ति की पूर्व पीठिका' का निर्माण करता है। उनके श्रीराम स्वयं कहते हैं।

सब मम प्रिय सब मम उपजाए।
सब ते अधिक मनुज मोहिं भाए।
तिन्ह महुँ द्विज द्विज महँ श्रुतिधारी।
तिन्ह महुँ निगम धरम अनुसारी।
तिन्ह महँ प्रिय बिरक्त पुनि ग्यानी।
ग्यानिहुँ ते अति प्रिय बिग्यानी।[20]

यहाँ 'बिग्यानी' का तात्पर्य विवेक सम्पन्न उस विशिष्ट ज्ञानी से हैं जो ईश्वर को जीवन का सर्वोत्तम लक्ष्य स्वीकार करता हैं। इसी स्वीकृति के बाद दास भाव का वास्तविक उदय होता है। क्योंकि जब तक दास को अपने स्वामी की वास्तविक चिन्मयता का बोध नहीं होगा तब तक उसका दासभाव न तो अखंड रह सकता है और न ही उसकी सेवा भावना समर्पण सम्पन्न हो सकती है। सेवक को अपनी समस्त आकांक्षाएँ प्रभु को समर्पित कर देनी चाहती हैं, सम्बन्धों की सारी डोरें केवल उसी से जोड़नी होती है और एकमात्र उसी के प्रति अनन्य भाव धारण करता होता है। इसीलिए शांति

चाहे निर्वेद–मूलक हो अथवा शममूलक उसकी परिणति अहंकार रहित दास्य तथा आकांक्षा एवं आलस्य रहित सेवा भावना में होना अनिवार्य हैं।

ब्रह्मा, शिव, अत्रि वशिष्ट, याज्ञवल्क्य, लोमष, अगस्त्य जनक तथा वाल्मीकि जैसे अनेक पात्र परम ज्ञानी, विमल विवेकवान तथा प्रभु के अनंत ऐश्वर्य के अनुभवकर्ता हैं। लेकिन, उन्हीं अनुभवों के बीच से श्रीराम का प्रभुत्व प्रकट होता है उसी प्रभुता के सम्मुख इन सभी को दास्य–भाव से नतमस्तक होना भी पड़ता है। अत्रि, भाव, ब्रह्मा, वेद, नारद, सनकादिक, काकभुशुण्डि आदि द्वारा की गई स्तुतियों से यह स्पष्ट होता है। मन्दोवरी यद्यपि रावण के प्रति एकनिष्ठ नारी है। वह अपने सौभाग्य के प्रति सचेष्ठ एवं पति का कल्याण चाहने वाली भी हैं। उसे श्रीराम के वेद वर्णित विराट व्यक्तित्व का अति व्यापक एवं महान बोध भी है, तभी वह बारम्बार अपने पति को राम के प्रति सेवक भाव से समर्पित होने के लिए प्रेरित करती रहती हैं। शिव जी उनके सेवक, स्वामि सखा हैं ही। अत्रि, वशिष्ठ और अगस्त्य जैसे गुरूजन भी भीतर अथवा स्पष्ट रूप से अपने मन में दासत्व का अनुभव करके हर्षित ही होते हैं। अस्तु तुलसी के शांत भावाश्रित चिन्मय में भी दास्य भाव का पवित्र समन्वय हुआ है।

निष्कर्ष

तुलसी के काव्य में निर्वेद अथवा शमस्थायी भाव युक्त शांत रस की गहन अनुभूति वाले अनेक स्थल मिलते हैं। यद्यपि इस प्रकार के आश्रय परम ज्ञानी होते हैं, तो भी भाव के बिना रस की कल्पना असंभव हैं। इसी ज्ञान के मध्य से विवेक जाग्रत होता है और यह विवेक प्रभु की सर्वव्यापकता, परम कृपा शक्ति, शरणागत वत्सलता आदि अनुभवों के द्वारा परिपुष्ट होता है। अतः भक्ति का आधार बनता है। गोस्वामी जी ने सगुण–निर्गुण ब्रह्य में कोई विशेष अन्तर नहीं माना है। ब्रह्य निर्गुण निराकार है, वे यह स्वीकार करते हैं। किन्तु अपने सम्पूर्ण ऐश्वर्य के साथ वही ब्रह्य लोकशिक्षण, लोकरक्षण तथा भक्तजन मनरंजन के लिए प्रकट होता है। इसलिए उनकी दृष्टि में परम ज्ञानी भी भक्ति के सुगम मार्ग को स्वीकार करता है। उनका यही रस चिन्तन उनके शांत रस को ज्ञानी कवियों की अपेक्षा अधिक अनुभवगम्य बनाता है। एक अन्य प्रमुख विशेषता यह है कि गोस्वामी जी शांत चिन्मय में भी सेवक–सेव्य भाव का किंचित समावेश कर लेते हैं और यह समावेश प्रभु के विराट ऐश्वर्य बोध का स्वाभाविक प्रतिफलन भी है और भक्त के सुपात्र होने का बोधक भी।

सन्दर्भ सूची :

1. रस सिद्धान्त स्वरूप और विश्लेषण, आनन्द प्रकाश दीक्षित, गोरखपुर, 1960, पृ0 274
2. हिन्दी काव्य प्रकाश–मम्मट, (आचार्य विश्वेश्वर कृत व्याख्या)
3. कामायनी के अध्ययन की समस्याएं, डॉ0 नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1987 पृ0 25
4. रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस गोरखपुर, संवत् 2061, पृ0 361
5. वियोगी हरि सं, विनय पत्रिका, मू0 ले0 तुलसीदास, साहित्यसेवा सदन वाराणसी, सं0 2013वि0, पद सं0 105,
6. वही, पद सं0 172
7. रामचरितमानस, 7/44/3,
8. विनय पत्रिका, पद सं0 90
9. रामचरितमानस 4/20/2–6
10. विनय पत्रिका, पद सं0 172,
11. वही, पद सं0 124
12. रामचरित मानस–2/126/हरिगीतिका
13. विनय पत्रिका, पद सं0–202,
14. वही, पद सं0 205
15. रामचरितमानस, 1/225/4,
16. वही, 6/14–15
17. वही, 6/14–15
18. रामचरितमानस, 7/108/1–8
19. वही, 6/111/5–8
20. वही, 7/86/2–4

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष–हिन्दी विभाग,
आई0टी0पी0जी0 कालेज, लखनऊ

3

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी

डॉ. राम गरीब पाण्डेय 'विकल'

विश्व साहित्य में रामकथा साहित्य की गणना चोटी के चुनिन्दा साहित्य में होती है। न केवल भारतीय अपितु दुनिया की विभिन्न भाषाओं में रामकथा का अनुवाद-सृजन हो चुका है और अद्यतन हो रहा है। गोस्वामी तुलसीदास लिखते हैं-

नाना भाँति राम अवतारा।
रामायन सत कोटि अपारा।

(रामचरित मानसः बालकाण्डः रामचरित मानस माहात्म्य)

रामकथा का मूल स्रोत महर्षि बाल्मीकि कृत 'रामायण' सर्वमान्य है, किन्तु इसकी भाषा संस्कृत होने के कारण यह केवल विद्वत् समाज तक ही अपनी पहुँच बना पाया। इस बात को अनुभव करते हुए गोस्वामी तुलसीदास ने 'भाषानिबद्ध मतिमंजुल मातनोति' रामचरित मानस की रचना की, जो न केवल उच्च शिक्षित विद्वत् समाज, सन्त समाज, दार्शनिकों के बीच अध्ययन-चिन्तन और विवेचन का केन्द्र बना, बल्कि सामान्य जन यहाँ तक कि अल्प शिक्षित और अशिक्षित जन मानस के बीच भी वह उतना ही लोकप्रिय हुआ। यदि रामचरित मानस को जन सामान्य के जीवन की आचार संहिता कह दिया जाय, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

रामचरित मानस हो या बाल्मीकि रामायण या अन्य कोई रामायण, प्रकारान्तर से सबकी कथा एक ही है, पात्र भी वही हैं और उद्देश्य भी सबका एक ही है। रामकथा के द्वारा न केवल समाज की विभिन्न संरचनाओं का चित्र प्रस्तुत होता है, अपितु विभिन्न पात्रों की विभिन्न गतिविधियों और उनके आचरण के द्वारा अनेक ऐसे मानक सामने आते हैं, जो अपनी प्रासंगिकता के लिए सार्वभौमिक और सार्वकालिक भी प्रमाणित होते हैं। महाकाव्य में रचनाकार के द्वारा इन उद्देश्यों की पूर्ति विभिन्न पात्रों की योजना और उनके चरित्रांकन के द्वारा ही सम्भव होती है।

पात्रों का चारित्रिक विश्लेषण करने के लिए उनकी चारित्रिक विशिष्टताओं का अवगाहन करना पड़ता है और इसी के माध्यम से महाकाव्य के उद्देश्य की प्रतिष्ठा भी होती है। 'विवेचनात्मक अध्ययनः कामायनी' के लेखक द्वय लिखते हैं- "स्थूल रूप से चरित्र-चित्रण की दो विधियाँ हैं (अ) प्रत्यक्ष शैली तथा (ब) अप्रत्यक्ष शैली। प्रत्यक्ष शैली के अन्तर्गत कवि अपने वर्णनों द्वारा चरित्र पर प्रकाश डालता है और अप्रत्यक्ष् शैली द्वारा वह अपने को चरित्र से पृथक कर लेता है।" (विवेचनात्मक अध्ययन: कामायनीः डॉ. कृष्ण देव शर्मा व भारत भूषण सरोज: पृ. 66-67) रामकथा के विभिन्न ग्रन्थों में भी कथा-प्रवाह की आवश्यकतानुसार पात्रों का संयोजन देखने को मिलता है, जिन्हें प्रधान पात्र-गौण पात्र, पुरुष पात्र-नारी पात्र आदि अनेक वर्गों में विभाजित किया जा सकता है, किन्तु यह भी ध्यान रखने योग्य है कि महाकाव्य में दो प़क्ष ही प्रमुख हैं। पहला राम पक्ष और दूसरा रावण पक्ष। इन्हीं दोनों पक्षों की कथा को गति देने के लिए विभिन्न पात्रों की योजना की गई है।

जिस प्रकार महाकाव्य की कथावस्तु आधिकारिक और प्रासंगिक होती है, उसी प्रकार कथावस्तु के अन्तर्गत प्रधान पात्रों और प्रासंगिक पात्रों की योजना भी महाकाव्य का एक हिस्सा है। विभिन्न प्रासंगिक पात्रों की योजना, राम और रावण के चरित्र को उजागर करने में सहायक होती है। कथासूत्र के विकास के लिए अनेकानेक मोड़ों से गुजरती हुई रामकथा राम व रावण के चरित्रों के माध्यम से अनेक सामाजिक,

पारिवारिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक पक्षों को उद्घाटित करती चलती है। राम व रावण के चरित्र के अनेक पक्ष वर्तमान में अपनी प्रासंगिकता प्रमाणित करते हैं। रामयण की लोकप्रियता और उसकी सार्थकता का यही सबसे बड़ा प्रमाण है। राम और रावण के चरित्र की वर्तमान में प्रासंगिकता का निरूपण करने के लिए, दोनों प्रधान पात्रों के चरित्रों की प्रमुख विशिष्टताओं को निम्नानुसार समझा जा सकता है।

राम का चरित्र और वर्तमान में उसकी प्रासंगिकता

राम के चरित्र का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है उनका रामत्व। उनके इसी चरित्र के कारण वर्तमान में रामराज्य की कल्पना को साकार करने हेतु हम सब प्रयत्न करते दिखते हैं। राम के इस रामत्व की शुरूआत उनके वनगमन से होती है। अयोध्या नगरी में राजा दशरथ, राम के राज्याभिषेक की तैयारी करते हैं। इसी बीच कैकेयी के कोपभवन में जाने और राम को वनवास देने का प्रसंग आता है। राम को जब ज्ञात होता है, वह कैकेयी के भवन में जाकर पूरा वृत्तान्त जानने का प्रयत्न करते हैं। यहीं से राम के चरित्र का वह विशेष पक्ष सामने आता है।

महाराज दशरथ अर्धविक्षिप्त सी दशा में आँसू बहाते और ग्लानिवश प्रलाप करते दिखते हैं। उन्हें यह नहीं सूझ रहा है कि किस तरह से राम को वन जाने के लिए कहें, तब राम वस्तुस्थिति को समझते हुए स्वयं वनवास का वरण कर अपने रामत्व की प्रतिष्ठा करते हैं। बाल्मीकि रामायण में इस प्रसंग को इन श्लोकों में देखा जा सकता है-

अहं हि सीतां राज्यं च प्राणानिष्टान् धनानि च।
दृष्टो भ्रात्रे स्वयं दद्यां भरताय प्रचोदितः।।
किं पुनर्मनुजेन्द्रेण स्वयं पित्रा प्रचोदितः।
तव च प्रियकामार्थे प्रतिज्ञामनुपालयन्।।
तथाश्वासय ह्रीमन्तं किं त्विदं यन्महीपतिः।
वसुधासक्तनयनो मन्दं श्रूणमुश्रति ।।
गच्छन्तु चैवानयितुं दूताः शीघ्रजवैर्हयैः।
भरतं मातुलकुलादद्यैव नृपशासनात्।।
दण्डकारण्यमेषोऽहं गच्छाम्येव हि सत्वरः।
अविचार्य पितुर्वाक्यं समां वस्तुं चतुर्दश।।

(बाल्मीक रामायणः अयोध्याकाण्डः उन्नीसवाँ सर्गः 7-11)

राम, माता कैकेयी के कार्य और उनकी इच्छा का मान रखते हुए सब कुछ त्यागने को तैयार हैं। दूसरे, वनगमन के लिए आदेश देने में पिता दशरथ का धर्मसंकट अनुभव करते हुए, राम स्वयं वन जाने का निर्णय ले लेते हैं। यहीं से राम के रामत्व की प्रतिष्ठा की शुरूआत होती है। राम का यह चरित्र वर्तमान में इस अर्थ में प्रासंगिक हो जाता है कि पिता या अन्य किसी को भी धर्मसंकट में देख, अपने कर्तव्य का निर्धारण स्वयं करना चाहिए।

समाज और परिवार के लिए राम के चरित्र का जो आदर्श रामायण में मिलता है, वह सार्वभौमिक होने के साथ-साथ सार्वकालिक भी है। आज के समय में स्त्री सशक्तीकरण के खोखले नारे लगाने की होड़ दिखती है, किन्तु राम ने स्त्री की मर्यादा और उसके संरक्षण को अपने आचरण के माध्यम से प्रस्तुत किया है। वनगमन प्रसंग में राम को छोड़कर वापस आये सुमंत्र दशरथ को जो वृत्तान्त बताते हैं, उसके द्वारा तुलसीदास जी ने राम के इस चरित्र को उद्घाटित किया है। सुमंत्र, महाराज दशरथ को बताते हैं कि -

राम सखा तब नाव मगाई।
प्रिया चढ़ाइ चढ़े रघुराई।

(रामचरित मानसः अयोध्याकाण्डः सुमंत्र-दशरथ संवाद)

इसी प्रकार सफल और श्रेष्ठ दाम्पत्य के लिए पति-पत्नी को एक दूसरे के मनोभावों से परिचित होना भी आवश्यक है। गंगा पार होने के बाद राम के चेहरे से यह क्षोभ-भाव व्यक्त होता है कि केवट को उतराई में कुछ नहीं दिया गया और राम के चेहरे को देखकर सीता के द्वारा उनके मनोभावों को समझ लेना, सफल दाम्पत्य के लिए हर युग में प्रासंगिक रहने वाला चरित्र है। रामचरित मानस की पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

पिय हिय की सिय जाननिहारी।
मनि मुदरी मन मुदित उतारी।

(रामचरित मानसः अयोध्याकाण्डः गंगा पार जाने का प्रसंग)

मानव मन की भावनाओं को मनोविज्ञान में मनोविकार कहा गया है। इन्हीं मनोविकारों में से एक है- क्रोध। सामान्य रूप से क्रोध को मनुष्य के लिए अहितकर माना गया है। इसके कारण मनुष्य का विवेक नष्ट होता है, ऐसी अवधारणा गलत भी नहीं है। इसीलिए क्रोध को त्याज्य माना जाता है, किन्तु रामचरित मानस में स्थिति विशेष होने पर, इसे आवश्यक प्रमाणित किया गया है। रामचरित मानस का यह प्रसंग दृष्टव्य है-

बिनय न मानत जलधि जड़, गये तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होय न प्रीति।।
लछिमन बान सरासन आनू।
सोखौं बारिधि बिसिख कृसानू।
सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती।
सहज कृपन सन सुन्दर नीती।
ममता रत सन ग्यान कहानी।
अति लोभी सन बिरति बखानी।
क्रोधिहिं सम कामिहिं हरि कथा।
ऊसर बीज बएँ फल जथा।
अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा। .....

(रामचरित मानसः सुन्दरकाण्डः समुद्र पर श्रीराम का क्रोध प्रसंग)

उक्त प्रसंग में तुलसीदास जी क्रोध के साथ अनेक अन्य मनोविकारों को भी औचित्य की तुला पर रखते हुए दिखते हैं। क्रोध को मनुष्य मात्र के लिए त्याज्य होने के बाद भी, लोकमंगल का प्रयोजन होने पर कल्याणकारी और ग्राह्य माना गया है। प्रकारान्तर से इसे ऐसे भी समझा जा सकता है कि यदि युद्ध भूमि में कोई सैनिक या योद्धा शत्रु के सामने खड़ा है और वहाँ वह क्रोध को त्याज्य मानने लगा, तो उसकी पराजय निश्चित है। अर्थात मनोविकारों की ग्राह्यता या त्याज्यता परिस्थितियों के ऊपर निर्भर करती है। राम के चरित्र के माध्यम से वर्णित यह प्रसंग न केवल वर्तमान में, अपितु भविष्य के लिए भी प्रासंगिक कहा जायेगा।

मनुष्य के अन्दर यदि दृढ़ संकल्प हो तो वह प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सफल हो सकता है। रामायण में इस सिद्धान्त की स्थापना राम के चरित्र के माध्यम से की गयी है। वनवासी राम वन-वन भटक रहे हैं। उनके रहने के लिए पर्णकुटी, बैठने के फटिक शिला, शयन करने के लिए पत्तों और घास-फूस की साथरी और भोजन के लिए कन्द-मूल-फल यही उपलब्ध था। ऐसी दशा में सीता-हरण के रूप में एक और विपत्ति। सीता की खोज करना और उन्हें वापस ले आना सामाजिक मर्यादा और स्वाभिमान की बात तो है ही, स्त्री के लिए रक्षित भाव का भी द्योतक है।

इस समूचे घटनाक्रम में राम के चरित्र के माध्यम से रामायण में जो प्रसंग वर्णित है, वह आदर्श के साथ ही व्यावहारिकता की दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। इस घटनाक्रम में कई प्रसंग प्रासंगिकता की दृष्टि से उल्लेखनीय और आज की स्थिति मे भी ग्राह्य व अनुकरणीय हैं। साधन विहीन राम अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते हुए, वानर-भालुओं से मैत्री करते हैं। यह प्रसंग जहाँ एक ओर राम की तत्कालीन परिस्थितियों में उनके विवेक का परिचय देता है, वहीं इसका दूसरा पक्ष और भी महत्वपूर्ण है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने उनकी पुस्तक 'वयं रक्षामः' में इन वानर-भालुओं आदि का वनवासी जातियों के रूप में उल्लेख किया है। अर्थात राम नगरीय सभ्यता से होकर भी, सब भाँति पिछड़े और उपेक्षित उस वनवासी वर्ग को साथ लेकर चलते हैं। यह आज की हमारी लोकतांत्रिक प्रणाली का प्राणतत्व कहा जा सकता है। हमारे लोकतंत्र की भी यही मंशा है कि सबको साथ लेकर चलना है। राम-सुग्रीव मैत्री से इस प्रक्रिया की शुरूआत होती है और लंका विजय के बाद भी यह मैत्री यथावत रहती है। बाल्मीकि रामायण में वर्णित है-

तन्ममैवैष सत्कारो लाभश्चैवोत्तमः प्रभो।
यत्वमिच्छसि सौहार्दे वानरेण मया सह।।
रोचते यदि मे सख्यं बाहुरेष प्रसारितः।
गृह्यतां पाणिना पाणिर्मर्यादा बध्यतां ध्रुवा।।
एतत् तु वचनं श्रुत्वा सुग्रीवस्य सुभाषितम्।
सम्प्रहृष्टमना हस्तं पीडयामास पाणिना।।

(बाल्मीकि रामायणः किष्किन्धाकाण्डः पांचवा सर्गः श्लोक

10-12)

गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस में इस प्रसंग को बाल्मीकि रामायण की अपेक्षा कुछ संक्षेप में रखा है-

तब हनुमंत उभय दिसि की सब कथा सुनाय।
पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ।।
कीन्हि प्रीति कछु बीच न राखा।
लछिमन राम चरित सब भाषा।
कह सुग्रीव नयन भरि बारी।
मिलिहिं नाथ मिथिलेसकुमारी।

(रामचरित मानसः किष्किन्धाकाण्डः राम-सुग्रीव मैत्री प्रसंग)

सीता की खोज और राम-रावण युद्ध से एक सन्देश और भी निकलकर आता है और वह है - किसी भी दशा या परिस्थिति में नारी के मान-सम्मान और रक्षण के लिए उद्यत रहने का। राम सब प्रकार से साधन विहीन हैं, किन्तु सीता के मान-सम्मान की रक्षा के लिए, इस दशा में भी लंका जैसे साम्राज्य से टकराने का साहस रखते हैं। नारी न केवल एक स्त्री है, अपितु वह हमारी भारतीय संस्कृति में हमारा स्वाभिमान भी है। इसलिए उसकी रक्षा के लिए हमें प्राणप्रण से तत्पर रहने की आवश्यकता है। रामायण का यह प्रसंग भी राम के चरित्र के माध्यम से हर युग के लिए प्रासंगिक है।

किसी भी मृत का अन्तिम संस्कार मानव संस्कृति का अभिन्न अंग है। यह न केवल मृतक के लिए अपितु समाज और पर्यावरण के लिए भी अनिवार्य है। सीता की खोज में भटकते हुए राम की भेंट जब आहत जटायु से होती है। सीता को मुक्त कराने के प्रयास में, रावण के साथ युद्ध करते हुए बुरी तरह घायल जटायु का राम को सन्देश देने के बाद प्राणान्त हो जाता है। ऐसी दशा में जबकि जटायु का कोई सगा-सम्बन्धी वहाँ उसका अन्तिम संस्कार करने हेतु मौजूद नहीं है, तब राम स्वयं उसका अन्तिम संस्कार करते हैं-

या गतिर्यज्ञशीलानामाहिताग्नेश्च या गतिः।
अपरवर्तिनां या च या च भूमिप्रदायिनाम्।।
मया त्वं समनुज्ञातो गच्छ लोकाननुत्तमान्।
गृद्धराज महासत्व संस्कृततश्च मया व्रज।।
एकमुक्त्वा चितां दीप्तामारोप्य पतगेश्वरम्।
ददाह रामो धर्मात्मा स्वबन्धुमिव दुःखितः।।

(बाल्मीकि रामायणः अरण्यकाण्डः अरसठवाँ सर्गः श्लोक 29-31)

गोस्वामी तुलसीदास ने भी रामचरित मानस में राम के चरित्र के इस लोकग्राही प्रसंग को उभारा है-

अबिरल भगति माँगि बर, गीध गयउ हरि धाम।
तेहिं की क्रिया जथोचित, निज कर कीन्हीं राम।।

(रामचरित मानसः अरण्यकाण्डः दोहा क्र. 32)

रामायण के कथानक में शबर जाति की तपस्विनी शबरी का प्रसंग प्रायः हर पुस्तक में पाया जाता है। पुराणों व इतिहास ग्रन्थों में शबर जाति को अर्द्धसभ्य वनवासी कहा गया है। राम को यह बात पता थी, इसके बावजूद वह शबरी से न केवल मिलने जाते हैं, बल्कि उसका आतिथ्य, स्वागत-सत्कार भी स्वीकार करते हैं। रामचरित मानस के अनुसार-

कंद मूल फल सुरस अति, दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए, बारंबार बखानि।।

(रामचरित मानसः अरण्यकाण्डः दोहा क्र. 34)

आज के समय में जिस समरसता के लिए हमें संविधान की दुहाई देनी पड़ती है, वह आदर्श हमारे रामायण ग्रन्थों में पहले से ही विद्यमान है। अर्थात कोई ऊँच-नीच नहीं, सब समान हैं। सब प्रेम के अधिकारी हैं। रामचरित मानस के उत्तरकाण्ड में भी 'सब नर करहिं परस्पर प्रीती' के कथन द्वारा इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। राम के चरित्र के माध्यम से वर्णित यह प्रसंग मानव समाज के लिए सर्वदा प्रासंगिक है।

रामायण में राम के चरित्र की बहुत महत्वपूर्ण कड़ी है उनका राजा का रूप। वर्तमान लोकतांत्रिक परिवेश में जहाँ सत्ता के गलियारों में दो खेमे साफ-साफ दिखायी देते हैं। वहाँ सबकी अपनी-अपनी डफलियाँ हैं और अपने-अपने राग भी। कोई राम को सामने कर राजनीति की गाड़ी खींचने के लिए प्रयासरत है, तो कोई रामराज्य की परिकल्पना को ही

घोर दक्षिण पंथी विचारधारा से जोड़कर उसे कठघरे में खड़ा करता दीखता है। रामायण के अध्ययन और अनुशीलन हेतु यदि हम धैर्यपूर्वक समय निकाल सकें, तो यह विवाद ही नहीं होगा। राम के चरित्र की प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष विधि से चित्रित विशिष्टताओं को यहाँ कुछ बिन्दुओं और प्रसंगों के माध्यम से समझा जा सकता है-

राजकोषीय राजस्व का एक स्रोत, कर संग्रह भी होता है। कराधान पद्धति के लिए तुलसीदास के मतानुसार-

बरसत हरसत लोक सब, करसत लखै न कोय।
तुलसी प्रजा सुभाग ते, भूप भानु अस होय।।
(दोहावली: गोस्वामी तुलसीदास)

तो उपभोक्ता वस्तुओं के मूल्य निर्धारण हेतु, जन सामान्य के लिए जीवनोपयोगी वस्तुओं की मूल्यवृद्धि का निषेध भी होना चाहिए-

मणि माणिक महँगे किये, सहजे तृण जल नाज।
तुलसी सोई जानिये, राम गरीब नेवाज।।
(दोहावली: गोस्वामी तुलसीदास)

रामायण में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से चित्रित, राजा के रूप में राम का चरित्र आज बहुत अधिक प्रासंगिक दिखता है। राजा को कैसा होना चाहिए, उसके कर्तव्य क्या हैं और लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा कैसे हो सकती है, इन विषयों में रामराज्य का प्रसंग वर्तमान शासन प्रणाली के लिए आईना प्रस्तुत करता है-

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अबसि नरक अधिकारी।
(रामचरित मानस: अयोध्याकाण्ड: राम-लक्ष्मण संवाद प्रसंग)

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज नहिं काहुहिं ब्यापा।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती।
चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।
अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा।
सब सुन्दर सब बिरुज सरीरा।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना।
नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।
सब निर्दम्भ धर्मरत पुनी।
नर अरु नारि चतुर सब गुनी।
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी।
सब कृतग्य नहिं कपट सयानी।
(रामचरित मानस: उत्तरकाण्ड: रामराज्य प्रसंग)

जौं अनीति कछु भाखौं भाई।
तौ मोहिं बरजहु भय बिसराई।
(रामचरित मानस: उत्तरकाण्ड: राम का प्रजा को संबोधन प्रसंग)

इस प्रकार रामायण की कथावस्तु में राम का चरित्र आज के समय में न केवल प्रासंगिक है वरन् अनुकरणीय भी है।

रावण का चरित्र और वर्तमान में उसकी प्रासंगिकता

रामकथा में जब रावण की चर्चा आती है, तो एक आम अवधारणा के रूप में हम रावण को खलनायक के रूप में देखते हैं। बहुत स्वाभाविक है कि खल पात्र के रूप में चित्रित रावण के चरित्र को अनुकरणीय या प्रासंगिक कहने में भी हम संकोच करें, किन्तु रावण के चरित्र पर विचार करने का एक दृष्टिकोण और भी हो सकता है। दृष्टिकोण बदलकर देखने पर हमें रावण के चरित्र में अनेक अनुकरणीय गुण मिलने लगते हैं और वह प्रासंगिक हो जाता है। इसके लिए हमें राम के रामत्व की ही तरह, रावण के रावणत्व पर भी विचार करना होगा।

बाल्मीकि रामायण में रावण के पूर्वजन्म की कथा का वर्णन नहीं मिलता, किन्तु श्रीमद्भागवत महापुराण में रावण के पूर्वजन्म की कथा को समुचित स्थान दिया गया है-

तद्वाममुष्य परमस्य विकुण्ठभर्तुः कर्तुं प्रकृष्टमिह धीमहि मन्दधीभ्याम्।
लोकानितो व्रजतमन्तरभावदृष्ट्या, पापीयसस्त्रय इमे रिपवोऽस्य यत्र।।
(तृतीय स्कन्धः पन्द्रहवाँ अध्यायः श्लोक 34)

तन्मे स्वभर्तुरवसायमलक्षमाणौ,
युष्मद्व्यतिक्रमगतिं प्रतिपद्य सद्यः।
भूयो ममान्तिकमितां तदनुग्रहो मे,

यत्कल्पतामचिरतो भृतयोर्विवासः।।
(तृतीय स्कन्धः सोलहवाँ अध्यायः श्लोक 12)
तौ तु गीर्वाणऋषभौ दुस्तराद्धरिलोकतः।
हतश्रियो ब्रह्मशापादभूतां विगतस्मयौ।।
(तृतीय स्कन्धः सोलहवाँ अध्यायः श्लोक 33)

भगवान विष्णु के पार्षद जय और विजय, सनकादि ऋषियों के शाप के कारण तीन जन्मों के लिए राक्षस योनि प्राप्त करते हैं। उनके उद्धार के लिए जो उपाय निर्धारित किया गया है, वह है श्रीहरि के हाथों उनका वध। अर्थात रावण का रावणत्व पूर्व नियोजित है। गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार-

द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ।
जय अरु बिजय जान सब कोऊ।
बिप्र श्राप तें दूनहु भाई।
तामस असुर देह तिन्ह पाई।

00 00 00

तहाँ जलंधर रावन भयऊ।
रन हति राम परम पद दयऊ।
(रामचरित मानसः बालकाण्डः राम जन्म हेतु प्रसंग)

रावण-कुम्भकर्ण के रूप में तीसरी बार राक्षस योनि प्राप्त रावण को प्रतीक्षा है कि भगवान का अवतार हो और उनके हाथों मृत्यु प्राप्त कर इस राक्षस योनि से मुक्ति मिले। रामचरित मानस का यह प्रसंग दृष्टव्य है-

खर दूषन मोहिं सम बलवंता।
तिन्हहिं को मारइ बिनु भगवंता।
सुर रंजन भंजन महि भारा।
जौं भगवंत लीन्ह अवतारा।
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ।
प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ।
(रामचरित मानसः अरण्यकाण्डः खर-दूषण प्रसंग)

रावण महान पंडित है। अपनी तपस्या के बल पर वह कितने ही वरदानों का स्वामी है। स्वयं की मुक्ति के लिए भक्ति या तपस्या कुछ भी असंभव नहीं है, किन्तु समूचे कुल का उद्धार रावण का लक्ष्य है। स्मरणीय है कि युद्ध में पहले सबको भेजकर अन्त में स्वयं जाता है। अपने कुल-परिवार, समाज के हित के लिए रावण का संकल्प, हर युग में प्रासंगिक है। इस समूचे अभियान में रावण का असीम धैर्य देखने योग्य है। उसकी आँखों के सामने उसके पुत्र, भाई, कुल-परिवार सबका वध होता जाता है, किन्तु वह विचलित नहीं होता। महाभारत में इंगित धैर्य की अवधारणा को रावण मूर्त करता है-

धृतिर्नाम सुखे दुखे यया नाप्नोति विक्रियाम्।
(महाभारतः शान्तिपर्वः 162/19)

लंका पर चढ़ाई करने के लिए राम को समुद्र पार करना है। सेतु निर्माण होने के पश्चात वहाँ रामेश्वरम् शिवलिंग की स्थापना, प्राण-प्रतिष्ठा करने के लिए विद्वान पुरोहित की आवश्यकता है। ऐसे मे रावण को बुलाया जाता है। बाल्मीकि रामायण, रामचरित मानस आदि ग्रन्थों में यह प्रसंग अप्राप्य है किन्तु कम्ब रामायण (इरामावतारम्) में वर्णित प्रसंग - जाम्बवंत के माध्यम से रावण को पुरोहित के रूप में बुलाना और शिवलिंग की स्थापना कराने के उपरान्त, मनोरथ का ज्ञान होते हुए भी आचार्य धर्म का पालन करते हुए यजमान को विजयी होने का आशीर्वाद देना, रावण की उसके कर्म के प्रति निष्ठा का ज्वलन्त उदाहरण है। रावण को पता है कि उसका यजमान वनवासी है, दक्षिणा देने में सक्षम नहीं है। इसलिए वह यजमान से दक्षिणा के रूप में, उसकी मृत्यु के समय उसके सम्मुख उपस्थित रहने का वचन लेता है। रावण के चरित्र की यह विद्वतापूर्ण विशिष्टताएँ न केवल रावण के चरित्र का औदात्य प्रतिपादन करती हैं, बल्कि वर्तमान युग में अपनी प्रासंगिकता भी ़सिद्ध करती हैं। रावण के राक्षस कुल में, रावण की महारानी मन्दोदरी एक देवकन्या है। उसके द्वारा रावण को बार-बार राम से विरोध न करने की सलाह देना, आदर्श भार्या-धर्म का सन्देश देता है। बाल्मीकि रामायण के साथ ही रामचरित मानस में भी इस प्रसंग को सुचारु रूप से चित्रित किया गया है।

और अन्त में- लंका पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त, विभीषण का राज्याभिषेक कर जब राम द्वारा अयोध्या लौटने का प्रस्ताव रखा जाता है, तब लक्ष्मण के द्वारा सोने की भव्य नगरी लंका के प्रति

मोह व्यक्त किया जाता है। (बाल्मीकि रामायण के नाम से यह कथा प्रसंग कहीं-कहीं उद्धृत किया जाता है, किन्तु बाल्मीकि रामायण में ऐसा कोई श्लोक प्राप्त नहीं होता। कुछ विद्वानों का मत है कि यह बाल्मीकि रामायण के मद्रासी संस्करण में पाया जाता है। न भी पाया जाता हो केवल लोक प्रचलित हो, तब भी महत्वपूर्ण है।) ऐसी दशा में राम का यह कथन -

नेयं स्वर्णमयी लंका रोचते मम लक्ष्मण।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

हर युग के लिए सूत्रवाक्य सिद्ध होता है और हमारे लिए प्रासंगिक के साथ ही प्रेरणास्पद भी है।

प्लाट नं. 685/19
वाटर फिल्टर प्लांट के सामने तुलसीनगर, नौढ़िया,
सीधी (म.प्र.) भारत

4

रामायण कथित नीति शास्त्र

सुधा शर्मा

रामायण भारतीय संस्कृति की आत्मा है या भारतीय संस्कृति की पहचान रामायण है यह कथन अतिश्योक्ति न होगा। संस्कृति का आदिमहाकाव्य सामाजिक,राजनैतिक,आर्थिक, धार्मिक नैतिकता के मूल्यों का विवेचन, वैदिक संस्कृति के एक महान युग से सम्बन्धित युग का अनन्त भंडार समाये हुए है। दार्शनिक, कवि, रिषि, महर्षि द्वारा रचित रामायण का मूल उद्देश्य गृहस्थ आश्रम की श्रेष्ठता सिद्ध करना भी था।

कभी- कभी तो ऐसा लगता है कि इतने आदर्श चरित्र पृथ्वी पर कैसे उत्पन्न हो सकते हैं, अत: समाज में नैतिकता उत्पन्न करने हेतु कवि ने इतने महामानवों के चरित्र की परिकल्पना की है। क्योंकि रामायण का प्रत्येक चरित्र उच्चतम पराकाष्ठा की सीमा से पार तक आदर्श प्रस्तुत करता है। वास्तव में रामायण में दो संस्कृतियों का वर्णन हुआ है। असुर अत्यधिक ज्ञानवान होने के उपरान्त भी भौतिकवादी थे। निरा भौतिकवाद कल्याणकारी नहीं होता। अति ज्ञान नैतिकता के अभाव में विध्वंशकारी हो जाता है। ज्ञान और नैतिकता का मिश्रण अति आवश्यक है। अत: रामायण आध्यात्मवादी एवं भौतकवादी जीवन दर्शन के संघर्ष का इतिहास है। कवि का उद्देश्य निराभौतिकवाद और नैतिकता सम्पन्न ज्ञान के मध्य अन्तर को स्पष्ट कर समाज के सम्मुख आदर्श उपिस्थत करना था। रामायण सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ नैतिक महाकाव्य है

बालकांड में लिखा है कि वाल्मीकि तमसा नदी के किनारे रहते थे। उनके मन में किसी महा आदर्श मानव का चरित्र लिखने की इच्छा उठी। इसी समय व्याध द्वारा एक क्रोंच पक्षी को मारे जाने की घटना ने उनके हृदय में इतनी करूणा भर दी कि अनायास ही उनके मुँह से एक श्लोक निकला और ब्रह्मा के आदेशानुसार उन्होंने इसी नवीन छंद में राम के चरित्र को काव्यबद्ध किया। (वाल्मीकि रामायण 112126)

रामायण में 24 हजार श्लोक है। बालकांड, अयोध्यकांड, अरण्यकांड, किष्किन्धाकांड, सुंदरकांड, युद्धकांड। सम्पूर्ण काव्य में 606 सर्ग तथा18756 पद्य हैं। राम का काल आज से दस लाख वर्ष पूर्व का है अत: रामायण का रचनाकाल भी इतना ही पुराना होना चाहिए।

वाल्मीकि ने रामायण की रचना उन मर्यादाओं की पुनर्स्थापना के लिए की जिनकी अवहेलना से हमारी सनातन संस्कृति के लुप्त होने की आशंका उत्पन्न हो गई थी। वाल्मीकि ने रामायण के श्रेष्ठ पात्रों के माध्यम से सद्वृत्तियों, नैतिक मूल्यों को जागृत किया।

रामायण में नैतिकता, नैतिक मूल्यों, मानव मूल्यों नीति, धर्म आदि को व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक बताया है। वाल्मीकि के अनुसार व्यक्ति के आत्मोन्नति के लिए नैतिकता आवश्यक है। एक आदर्श जीवन के लिए कर्तव्यपरायणता, सत्य, सदाचार, दया, क्षमा, चरित्रबल, त्याग, शिष्टाचार पालन, आज्ञाकारी, शारीरिक पवित्रता, इन्द्रियों व मन पर संयम नियंत्रण इत्यादि नैतिक मूल्य, श्रेष्ठ मनुष्य की पहचान होती है, जो उसे जीवन का सही उपयोग करने का बोध कराती है।

रामायण युगीन शिक्षा का भी वर्णन है। व्यक्ति के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास, विद्यार्थी के शारीरिक मानसिक, आध्यात्मिक ,बौद्धिक विकास, और उनको व्यवहारिक रूप में उच्च बनाना शिक्षा मूलभुत उद्देश्य था। यह समय ब्रह्मचर्य का होता था

शिष्य गुरू के सानिध्य में रहकर शिक्षा प्राप्त करता था।

भारतीय सामाजिक संगठन और सामाजिक संरचना का मूल आधार वर्णव्यवस्था ही है। वैदिक काल से ही वर्णव्यवस्था निरन्तर सम्पूर्ण भारतीय समाज तथा संस्कृति के लिए मूल निर्धारक तत्व है ।

रामायण के प्रारम्भिक काण्डो में स्पष्ट रूप से वर्णन है कि उस समाज में जाति के आधार पर भेदभाव नहीं था। शूद्रों को समाज में बराबर का स्थान प्राप्त था। वाल्मीकि का कहना है कि शूद्रों का प्रथम कर्तव्य ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य की सेवा करना तथा आज्ञापालन करना है सभी वर्ण एक- दूजे के सहयोग से संतुष्ट रहते थे।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार गुरू व शिष्य का निकट का संबन्ध था। गुरू हर प्रकार का ज्ञान शिष्यों को देते थे। वेदों का अध्ययन व धार्मिक कार्यों को ब्रह्मचारी के लिए आवश्यक था। ताकि वह सच्चा आर्य बनकर आर्य संस्कृति के विकास में योगदान दे सके।

रामायण को गृहस्थाश्रम का ही ग्रन्थ माना जाता है। (वा. रा. /2/1/10) इसमें व्यक्ति अपनी पत्नी के साथ रहकर देवताओं, मुनियों, एवं पितरों के प्रति अपने कर्तव्यों को पूरा करता है।और इन तीनों कर्जों से मुक्त होना वेदों में आवश्यक माना जाता है।राजा दशरथ के शासनाकाल का वर्णन करते हुए वाल्मीकि जी कहते हैं कि अयोध्या में ऐसा कोई राजा नहीं था जो अग्निहोत्र या यज्ञ न करता हो। रामायण में पुलस्त्य तथा विश्रवा के द्वारा प्रतिदिन वेदो का स्वध्याय करने का वर्णन आता है। ब्रह्म यज्ञ करने से आत्मिक शक्ति प्राप्त होती है।

अयोध्यावासी नैतिक गुणों से परिपूर्ण थे इसका अनुमान यही से किया जा सकता है कि गुरू के सानिध्य में रहकर शिष्य शिक्षा लेते हुए नैतिकता की शिक्षा भी प्राप्त करते थे जो नैतिकता हनन करता था उसे दण्डित किया जाता था।(रा. 4/18/12) बलि जब पथभ्रष्ट हो जाता है तथा लोक से अपमानित किया गया, राम ने उसे नैतिक ज्ञान प्रदान किया। नैतिकता न अपनाने पर उसे प्राणो का त्याग करना पड़ा। नैतिक कर्तव्यों व अकर्तव्यों के निर्धारण के लिए शास्त्रोक्त नियमों का आश्रय लिया जाता था। रामायण के अनुसार अयोध्या के मंत्री नीतिशास्त्र के ज्ञाता थे। (वाल्मीकि रामायण 2/10/71) उस नगर में रहने वाले सभी मनुष्य प्रसन्न,धर्मात्मा, निर्लोभी, सत्यवादी आनन्दमय तथा अपने ही धन से संतुष्ट रहते थे।

रामायण के नायक राम ही केवल मर्यादा का पालन, सत्यनिष्ठ विचार, त्यागमय जीवन, आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श पति, श्रेष्ठ प्रजापालक, आदर्श शिष्य, आदर्श सेवक का उदाहरण प्रस्तुत नहीं करते, वरन भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न भी उन्हीं आदर्शों का पालन करते हैं।

गीता में कहा गया है कि जो व्यक्ति सुख- दुख, लाभ- हानि, जय- पराजय, मान- अपमान में सम रहता है वह योगी होता है। राम इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है जब उन्हें राजतिलक की सूचना मिलती है वे अति प्रसन्न नहीं होते और कुछ क्षण बाद ही जब वनगमन का संदेश पता चलता है उसे सुनकर वे विचलित नहीं होते हैं। अयोध्या का राज्य कोई छोटा - मोटा राज्य नहीं है चक्रवर्ती साम्राज्य है जिसे पाने के लिए कोई भी लालायित हो सकता है लेकिन धैर्यशाली, धीर- गम्भीर राम तनिक भी विचलित नहीं होते न संयम खोकर किसी का अपमान करते, न सौतेली माता का विरोध करते, न किसी पर क्रोध करते, न भाई भरत से ईर्ष्या द्वेष करते अद्वितीय व्यक्तित्व का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। ऐसे त्यागमय चरित्र तो देवताओं का हो सकता है, किसी साधारण व्यक्ति का नहीं । यही कारण है राम जनमानस की श्रद्धा का केन्द्र है वो सम्पूर्ण भारत के मन में निवास करते हैं।

वनवास बड़े भाई को होता है पर साथ चलने का आग्रह छोटा भाई/ सौतेला भाई लक्षमण करता है अपनी नवविवाहिता पत्नि को महल में छोड़कर। श्रीराम के साथ उनकी पत्नि है लेकिन लक्षमण 14 वर्ष के लिए पत्निवियोग स्वेच्छा से स्वीकार करते हैं ।

भरत हैं कि निर्बाध शासन को भी मिट्टी के ढेले के समान तुच्छ समझकर अस्वीकार कर देते हैं। अद्‌भुद त्याग का प्रतीक है भरत। विशाल साम्राज्य को देखकर वो हर्षित न होकर व्यग्र हो जाते हैं और अपने भाई राम को वापिस लाने का भरसक प्रयास करते हैं। प्रस्ताव न मानने पर उनकी पादुकाओं को राम का प्रतीक मानकर सिंहासन पर बैठाते हैं और एक सेवक की भाँति राज्य का संचालन करते है और मुनि की भाँति ही जीवन व्यतीत करते हैं। रामायण का प्रत्येक पात्र नैतिकता का पुतला है। सौतेली वैमनस्यता का भाव त्यागकर दशरथ की तीसरी पत्नि सुमित्रा अपने पुत्र लक्षमण को राम के साथ वनगमन जाने से रोकती नहीं वरन् शिक्षा देती है कि राम को अपने पिता तुल्य और सीता को माता के समान मानना और उनकी सेवा करना। उर्मिला महल में एकांकी जीवन व्यतीत करती है।

राम धर्म के ज्ञाता, गुणवान, कृतज्ञ, सत्यवादी तथा पवित्र थे। राम में क्षमा, तप, त्याग, सत्य, धर्म, कृतज्ञता और समस्त जीवों के प्रति दया की भावना थी। राम भरत को नीतिशास्त्र के अनुसार राज्य का शासन करने के लिए आदेश देते हैं। रामायण में नैतिक मूल्यों का विवेचन इस प्रकार है-

1. सत्यता : सत्य का तत्व अत्यन्त सूक्ष्म होता है। ज्ञान- विज्ञान वेत्ता सन्त महात्मा एवं रिषि मुनि महात्यागी ही सत्य के स्वरूप को जान सकते हैं,साधारणतया परिस्तिथि से जूझकर सत्य भी असत्य हो जाता है। वही व्यक्ति धर्मज्ञ कहला सकता है जिसमें सत्य- असत्य का निर्णय कर सत्य पालन करने की क्षमता है। राम को रामायण में सत्यपरायण, सत्यसंग, सत्यवादी तथा सत्यपालन आदि विशेषणों से सम्बोधित किया गया है। (अयोध्याकाण्ड 2,29,31,19,36,)

राज्याभिषेक के समय जब कैकेई उन्हें बुलाती है और पिता की स्थिति देखते हुए राम ने हाथ जोड़कर कैकेई से इतना कहा- जो माता-पिता की आज्ञा के अनुसार चलता है वही सपूत है। (श्रीराम 0,7,15)

चित्रकूट में राम को राज्य के प्रति आकर्षित करने के लिए जाबालि आस्तिकवाद का उपदेश देते हैं, तब भी राम सत्य को ही महत्व देते हैं-- संसार में सत्य ही धर्म धर्म की पराकाष्ठा है और सबका मूल है। जगत में सत्य ही ईश्वर है, सत्य के आधार पर धर्म की स्थिति रहती है, सत्य से बढ़कर कोई दूसरा परमपद नहीं है। भूमि, कीर्ति, यश तथा लक्ष्मी सभी सत्यवादी पुरूष को पाने की इच्छा करती हैं।

रामायण में वाल्मीकि ने अयोध्या के प्रत्येक नागरिक द्वारा सामाजिक कर्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन दिखाया है। और यह सही भी है क्योंकि "समाजो नराणां संघ:" अर्थात समाज मनुष्यों का समूह होता है और यदि व्यक्ति सुसंस्कारवान हैं तो समाज स्वयं ही सुसंस्कारवान बन जाता है। परहित से बढ़कर कौई धर्म नहीं है। क्षत्रियों का धर्म देश की रक्षा करना है रामायण में क्षत्रियों ने अपने धर्म का पालन पूर्ण निष्ठा से किया जो हमेशा मानव जाति के लिए प्रेरणास्रोत रहेगा। हनुमान ने अपना सारा जीवन परहित में ही लगा दिया। श्रीराम के मुख से ये शब्द-

"चरिष्यति कया भावदेषा लोके च मामिका
तावते भविता कीर्ति: शरीरेअ्प्यसवस्तथा।।"

इस प्रकार धन्य है हनुमान जो वानरकुल में उत्पन्न होकर भी श्रीराम के समान ही समाज के उच्च पद पर कर्तव्यपालन के कारण प्राप्त करते हैं। रामायण में अयोध्यावासी भी वंचितों को उनके अधिकार दिलाने की बात का समर्थन करते हैं वे कहते हैं-

"युष्माकं राघवोअरण्ये योगक्षेमं विधास्यति
सीता नारीजनस्यास्य योगक्षेमं करिष्यति।।"

वाल्मीकि रामायण में धर्म के चार चरण बताएँ हैं- सत्य, तप, दया और दान। सामाजिक जीवन में धर्म के मुख्यत: तीन रूप प्रकट होते हैं - आत्मनिष्ठ, सत्य, आस्तिक्य, पवित्रता,अनिर्वेद और व्रत इसके अन्तर्गत आते हैं।

2. वस्तुनिष्ठ : इसमें त्याग, दान, कारूण्य, शुश्रुषा, लोकहित और कर्मवाद आते हैं।

3. **आनुष्ठानिक मूल्य :** इसमें अग्निहोत्र, संध्यावंदन, बलिवैश्वदेव यज्ञ, व्रतोपासना, याज्ञिक हवन, द्विजपूजा, आध्यात्मिक कर्म सम्मिलित हैं। धर्म के विषय में वाल्मीकि ने कहा है-- धर्मो हि परमो लोके धर्मे सत्यं प्रतिष्ठतम्। अर्थात धर्म ही इस संसार में जीवन का परम लक्ष्य है तथा धर्म में ही सत्य की स्थिति विद्यमान है। वाणी में सत्यता होनी चाहिए। जो व्यक्ति सत्य से प्रेम करता है उसको किसी भी प्रकार का भय नहीं सताता। विभीषण कहता है- **"सत्यधर्माभिसक्तानां नास्ति मृत्युकृतं भयम्।"** इसी प्रकार तप का अभिप्राय है दत्तचित्त होकर अपने कर्तव्य का निष्ठापूर्वक पालन करना। सीताजी कहती है-

"पतिशुश्रूषणान्नार्यास्तपोनान्यादविधीयते।"

माता पिता और गुरू की सेवा से बढ़कर तीनों लोको में कोई वस्तु पवित्र नहीं है। राम सीता से कहते हैं- " स्वाधीनं समति क्रम्य मातरं पितरां गुरूम्" कर्मफल के त्याग से निरन्तर शांति की प्राप्ति होती है। श्रीराम त्याग की प्रतिमूर्ति हैं--

नैवाहं राज्यमिच्छामि न सुखं न च मेदीनीम।

मनुष्य का कर्तव्य है कि वह धनार्जन व दान में सामंजस्य बैठाए।

दान देते समय प्रतिफल में कुछ लेने की इच्छा का मूलत: त्याग करना ही श्रेष्ठ है। राम का हृदय करूणा से ओतप्रोत है-- राम: करूणवेदी च प्रजानां च हिते रत:। वाल्मीकि ने राम को धर्म से मंडित करके हमारे समक्ष धार्मिक मूल्यों को साकार रूप में समस्त वाछित सदगुणों के पालन के रूप में धर्म को जीवन में समाविष्ट किया है।

धृतिक्षमादमोस्तेयं शौचमिन्द्रयनिग्रह:।
धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ।।

अर्थात धैर्य क्षमा, दम, अस्तेय, इन्द्रयनिग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य और अक्रोध ये धर्म के दस लक्षण है। रामायण के सभी पात्रों का परलोक सुधारने पर बल देते हैं। मौन से व्यक्ति के व्यवहार में सत्वगुण आता है। और उसका मन सही मार्ग पर चलता है।

वाल्मीकि ने रामायण में मौन की पाँच दशाएँ बताई हैं- मूक,मौन, तूष्णी, स्तब्ध एवं मूर्छा।

जीवन मुक्ति का अभिप्राय अविद्या से मुक्ति और आत्मज्ञान की उपलब्धि से होता है। जब मनुष्य की चेतना वैयक्तिक एवं सामाजिक स्तरों पर अतिक्रमण कर किसी अव्यक्त सत्ता को जानने एवं उससे तादात्म्य स्थापित करने का प्रयत्न करती है तभी आध्यात्मिक मूल्यों की रचना होती है।

वाल्मीकि ने रामचरित्र के माध्यम से हमारे समक्ष वो आदर्श रखे हैं जिनपर चलकर व्यक्ति स्वयं समाज एव् राष्ट्र की चहुँमुखी विकास कर सकता है। वाल्मीकि ने रामायण के माध्यम से प्रमुख रूप से निम्न आदर्श हमारे सामने रखे हैं-- आचार- विचार, वर्णाश्रम व्यवस्था, संस्कार, धार्मिक सहिष्णुता, समन्वयवादिता, जीवन में आस्था, अनेकता में एकता, ईश्वरवादिता, नारी का सम्मान, मातृ पितृ गुरू भक्ति, कला कौशल, समुचित वेशभूषा व विश्वकल्याण की भावना।

धैर्य मर्यादा और आदर्श के साकार रूप राम हम सभी भारतीयों के लिए राष्ट्र संकट व धर्मसंकट के समय सम्बल प्रदान करते हैं। पंचवटी में जब लंकापति रावण छल- कपट का आश्रय ले सीता का हरण कर लेता है तब भी राम धैर्य नहीं खोते। वे चाहते तो लक्ष्मण को या अन्य किसी के माध्यम से अयोध्या के राजा भरत से सहायता माँग सकते थे या पास में ही उनकी ननिहाल थी उनसे सहायता माँग सकते थे लेकन उन्होंने वहीं की जंगली जातियों को एकत्रित कर सेना का संगठन किया। उनमें आत्मबल पैदा किया और आक्रमण कर विजयश्री को वर लिया । संकटग्रस्त परिस्थितियों में भी राम मर्यादा को संयम को नहीं त्यागते। सीताजी में अपार धैर्य, संयम और आत्मविश्वास है। वे शत्रु के यहाँ भी अपने आत्मबल, आत्मविश्वास और संयम को नहीं छोड़ती और पूर्ण विश्वास से अपने पति के आने की प्रतीक्षा करती । रामायण में वे सात्विक गुण है, वे सांस्कृतिक मूल्य हैं जिनको आत्मसात करने के बाद कुछ भी अवशिष्ट नहीं रहता।

रामायण में राम, सीता, लक्षमण, भरत, उर्मिला, हनुमानादि सभी परोपकार के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं एक स्थान पर भरत जी ने राम के लिए कहा है- **वृद्धिकामो हि लोकस्य सर्वभूतानुकम्पक:।** इस प्रकार रामायण केवल एक चरित्र की घटना नहीं है,मानवीय जीवन के सारी ऊँचाईयों को भूले बगैर जीवन के रेखांकित करने का काम वाल्मीकि जी ने किया है।

राम के माध्यम से कृतज्ञता के गुण का भी महत्व बताया है। राम अति कृतज्ञ और उदार है। सीता की रक्षा करने में प्राण त्यागने वाले जटायु के प्रति वे बार- बार अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं। उन्हें सीताहरण के दुख की अपेक्षा जटायु की मृत्यु का अधिक दुख होता है। वे जटायु को पितातुल्य मानते हुए उनका अंतिम संस्कार करते हैं। राम की उदारता का दिग्दर्शन उस समय होता हैजब वे राज्य सुख से वंचित करने वाली कैकेई के प्रति भी उदारता दिखाते हैं इसी प्रकार अयोध्याकांड में मंथरा के द्वारा राम वनगमन के चक्र में प्रधान भूमिका निभाने के बाद भी शत्रुघ्न भरत के कहने पर उसे क्षमा कर देते हैं।

इसी प्रकार रामायण में क्रोधित लक्ष्मण किष्किधाकांड में जब सुग्रीव के पास पहुँचते हैं तारा उनसे सुग्रीव को माफ करने की प्रार्थना करती है और कहती है कि सुग्रीव मन से आपका काम करना चाहते है, उनके मन में आपका काम करने की प्रबल इच्छा है अत: उन्हें क्षमा कर देना चाहिए। क्योंकि विपक्षी वीरों का नाश करने वाले वनराज सुग्रीव भोगो में आसक्त होकर इस समय यही पर थे। कृपया उन्हें भाई समझकर क्षमा कर दीजिए। और लक्ष्मण सुग्रीव को क्षमा कर देते हैं। इसी प्रकार से लक्ष्मण भी सुग्रीव से कहते है--हे सखे शोकमग्न श्रीराम के वचनों को सुनकर जो बातें मैंने तुम्हारे प्रति कह दी है, उनके लिए मुझे क्षमा करें। इस प्रकार रामायण कालीन समाज में क्षमाभाव युक्त लोगों का यही विश्वास था कि स्त्री हो या पुरूष सभी के लिए सर्वश्रेष्ठ आभूषण क्षमा ही है।

रामायण में प्रेम के गुण की भी अवहेलना नहीं की गई है। क्योंकि इस जगत की रचना प्रेम का ही प्रतिफल है। प्रेम एक अति पवित्र, सात्विक भावना है और मानव की सर्वोच्च व स्वाभाविक वृत्ति है। राम भी प्रेम से परिपूर्ण है। राम के प्रेम का व्यवहारिक रूप जब मिलता है जब वन में भरत राम से मिलने जाते हैं। भरत का आगमन सुनकर लक्ष्मण क्रोध से भर जाते हैं लेकिन राम लक्ष्मण को भी प्रेम से समझाते हैं। यद्यपि राम भी भरत के आगमन के अभिप्राय से अनभिज्ञ है,तथापि उन्होंने भरत के आगमन पर शंका कर अपने प्रेम को कुरूप नहीं होने दिया। यह उनका प्रेम ही है जो विश्वास को बल प्रदान करता है कि राम अपने बन्धुओं का वध करके राज्य धन-सम्पदा आदि प्राप्त नहीं करना चाहते। राम धर्म, अर्थ, काम और पृथ्वी का राज भाईयों के लिए चाहते है।

वाल्मीकि रामायण में सभी पात्रों की निजी पारिवारिक मूल्यता है। दशरथ स्वयं एक सत्य प्रतिज्ञ राजा है, पितृभक्त राम, मातृभक्त भरत, अपूर्व सहनशील, संयमी लक्ष्मण, ममतामयि कौशल्या, गरिमामयि सीता, पश्चाताप की प्रतिछाया कैकेई आदि अनेक पात्र इसके प्रमाण हैं।

रामायण के सभी पात्रों का परलोक पर दृढ़ विश्वास है। वे सभी शुभ कर्म करते हुए परलोक सुधारने पर बल देते हैं।

रामायणकालीन समाज परलोक की चिंता में ही मग्न नहीं रहते लौकिक जीवन में भी कर्तव्यों का भी

निष्ठा से पालन करते हैं। वाल्मीकि के राम राक्षसों का वध करने के साथ लौकिक जीवन में संघर्षरत होकर सर्वसाधारण को लोकधर्म के निर्वाह की शिक्षा भी देते हैं। चारित्रिक गुणों से सम्पन्न, सभी प्रणियों के हित में लगा हुआ राम के जैसा अन्य कोई नहीं है--

कोन्वस्मिन् साम्प्रतम् लोकगुणवान् कश्चवीर्यवान् ।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रत:।।

राम का सम्पूर्ण जीवन दयामय और परहित सम्पादन से पूर्ण है। राम ने अनेक कष्ट सहकर दूसरो का हित किया। रिषियों की यज्ञरक्षा, गुरूजी की आज्ञा से धनुषभंग, सत्य की रक्षा के लिए वनगमन और अंत

में समस्त नगरवासियों को साथ लेकर परमधाम में प्रयाण आदि सभी कार्य त्याग से परिपूर्ण और परोपकार के लिए है। भरत जी के ये वचन पूर्णरूपेण सत्य हैं-

वृद्धिकामो हि लोकस्य सर्वभूतानुकम्पक:।
यथा च भ्रातुषु स्निग्धस्तथास्मास्वपि राघव:।।

राम का मन कभी उद्विग्न नहीं होता। वे विद्वान, धर्मात्मा और अपने भाईयों का हित करते हैं । उनका जैसा प्रेम अपने भाईयों पर है वैसा ही स्नेह प्रजा पर भी है- श्रीराम प्रजा को सुख देने में चन्द्रमा के समान और क्षमा में पृथ्वी के समान हैं-

"प्रजासुखत्वे चन्द्रस्य वसुधाया: क्षमागुणै:"।

राजा दशरथ भी परोपकार की प्रतिमूर्ति हैं। वे सभासदो से कहते हैं -

इदं शरीरं कृत्स्नस्य लोकस्य चरता हितम्।
पण्डुरस्यातपत्रस्यच्छायां जरितमया।।

(वाल्मीकि रामायण अयोध्याकांड, 2/7)

जटायु भी सीताहरण के समय रावण को समझाते हैं कि-

लोकानां च हिते युक्तो रामो दशरथात्मज:

(वाल्मीकि रामायण अरण्यकाण्ड 50/5)

वाल्मीकि के राम सर्वत्र दूसरों की भलाई में ही लीन दिखाई देते हैं।

इसी प्रकार रामायण में त्याग की भवना का अत्यधिक महत्व है। रामायण के मुख्य नायक राम त्याग का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । वे अपने पिता के द्वारा दिए गए वचनों की रक्षा हेतु निर्विरोध रूप से स्वेच्छा से राजकीय वैभव का त्याग कर देते हैं। और घोषणा करते हैं कि राष्ट्र और यहाँ के मनुष्यों सहित धन-धान्य से सम्पन्न यह सारी पृथ्वी मैंने त्याग दी है। आप इसे भरत को दे दीजिए। अब मैं आपके आदेश का पालन करता हुआ दीर्घ काल तक वन में निवास करने के लिए अयोध्या से प्रस्थान कर रहा हूँ।

(वाल्मीकि रामायण 1/34/41/45)

भरत भी त्याग का श्रेष्ठ उदाहरण हैं वे प्राप्त राज्य को स्वीकार करना भी पाप समझते हैं। लक्ष्मण भी त्याग का अद्भुद उदाहरण प्रस्तुत करते हैं वे भी राजकीय सुख को ठोकर मार भाई की सेवा के लिए वनगमन के लिए आग्रह करते हैं। सीता भी त्याग की प्रतिमूर्ति हैं- युद्धकांड में रावण सीता को लोभ देते हुए कहता है कि यदि तुममेरी भार्या हो जाओगी तो सब प्रकार के आभूषणों से श्रृंगारित रहोगी और तुम्हारी सेवा में हजार दासियाँ होगी।

श्रीराम तीनों लोको में धर्मात्मा के रूप में प्रसिद्ध है। वाल्मीकि ने सत्यवादी व्यक्ति के हृदय में परमात्मा का निवास बताया है।

सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम्

(वाल्मीकि रामायण अयोध्याकांड 109/11)

राम जी कभी मजाक में भी असत्य भाषण नहीं करते। असत्य तो दूर की बात है वो कटु भाषण को भी पाप समझते हैं।वे स्वयं सीता से कहते हैं- हे सीता मैं मुनियों के समीप जो प्रतिज्ञा कर चुका हुँ,उसे जीवन में भंग नहीं कर सकता क्योंकि सदा से सत्य ही मेरा इष्ट है। मैं तुम्हारा ,लक्ष्मण का , और अपने प्राणों का त्याग कर सकता हूँ पर अपनी सत्यप्रतिज्ञा का त्याग नहीं कर सकता। वे जाबालि से भी कहते हैं--

सत्यमेवानृशंसं च राजावृतं सनातनम्
तस्मात् सत्यात्मकं राज्यं सत्ये लोक: प्रतिष्ठित:।।

(वाल्मीकी रामायण अयोध्याकांड 107/10)

रामायणकालीन समाज वेदों के अनुसार जीवनयापन करता है। रामायण में वाल्मीकि का ईश्वर के प्रति दृष्टिकोण वेदांत की भाँति है। उनका कहना है कि इस पृथ्वी पर मनुष्य ईश्वर की आज्ञा के अधीन ही सम्पूर्ण कार्यों में प्रवृत्त तथा निवृत्त होता है। ईश्वर के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए अयोध्याकांड में ही राम लक्ष्मण से अपने वनवास के सम्बन्ध में कहते हैं कि मेरे इस प्रवास में तथा पिता द्वारा दिए राज्य के पुन: हाथ से निकल जाने में ईश्वर को ही कारण समझनि चाहिए। राम कहते हैं कि मेरी समझ में कैकेई का विपरीत मनोभाव देव या ईश्वर ही कारण समझना चाहिए। राम का कहना है कि जिस विषय में अभी

कुछ सोचा न गया हो वह ईश्वर का ही विधान है। अत: उसी की प्रेरणा से मुझमें और कैकेई में यह परिवर्तन है।

वाल्मीकि रामायण में यज्ञ का विशेष महत्व है। लेकिन यह यज्ञ व्यक्तिगत लाभ के लिए न होकर सामाजिक कार्य था जो कि सम्पूर्ण प्राणियों के लिए लाभप्रद होता था।

राम धनुषधारण भी रक्षा के लिए करते हैं- अरण्यकाण्ड में वर्णन आता है कि जब सीता राम से अहिंसा धर्म का पालन करने के लिए अनुरोध करते हुए कहती हैं कि' अपने मन व इन्द्रियों को वश में रखने वाले क्षत्रियों का वन में धनुष धारण करने का उद्देश्य केवल इतना है कि वे संकट में पड़े हुए प्राणियों की रक्षा कर सकें।' (वा. रा. 3.9.26,3.10.13)

राम समदृष्टि रखने वाले हैं। उनके लिए कौशल्या, सुमात्रा और कैकेई समान है। स्नेह, सम्मान, प्रेम एवं पालन- पोषण की दृष्टि से भी उनमें कोई अंतर नहीं है। वे अन्य स्त्री को भी माँ के समान आदर देते हैं।

एक पत्नीव्रत का पालन करने के कारण वे मर्यादा पुरूषोत्तम कहलाते हैं।

वाल्मीकि रामायण में पूर्व जन्म में पूर्ण विश्वास है। भारतीय संस्कृति में यह विश्वास है कि मनुष्य को अपने अच्छे या बुरे जन्मों की फल अवश्य भोगना पड़ता है । इस जन्म के कर्मों की फल अगले जन्म में भी भोगना पड़ता है। इसी विश्वास के परिणामस्वरूप अयोध्याकांड में सीता राम से कहती है कि आपके साथ अनुगमन करने से परलोक में भी मेरा कल्याण होगा और जन्म-जन्मान्तर तक भी आपके साथ मेरा संयोग बना रहेगा। सीता का कहना है कि इस लोक में पिता आदि के द्वारा जो कन्या जिस पुरूष को अपने धर्म के अनुसार जल में संकल्प करके दी जाती है वह मरने के बाद परलोक में भी उसी की स्त्री होती है। (वाल्मीकि रामायण 2/29/ 18)

वाल्मीकि ने मानव के प्रत्येक कार्य को देवाश्रित माना है। लेकिन धर्म के अन्तर्गत किया गये कार्य को देवपक्ष तथा अधर्म को असुर पक्ष माना है। वाल्मीकि ने मानव जीवन को कर्मभूमि कहा है जिसमें मानव को अपने ही कर्मों में केवल शुभकर्म करने चाहिए। ये शुभ कर्म इस प्रकार हैं- सत्य, धर्म, अहिंसा, पराक्रम, प्रियवदिता, परोपकार, बड़ो का आदर, देव तथा अतिथि की पूजा करना। उनके अनुसार शुभ कार्य करने से सुख मिलता है। इस विषय में वे कहते है कि धर्म सूक्ष्म है, परम दुर्जेय है, किंतु सभी प्राणियों का अन्त:करण कार्य करने से पहले शुभ- अशुभ को समझ सकता है। (वा. रा. किष्किन्धाकांड 18/15)

वाल्मीकि रामायण में व्यक्ति का जीवन एहिक तथा स्थूल सुख प्राप्त करने के लिए नहीं है वरन् वह अमृत ज्योति पाने, परमानंद का लाभ प्राप्त करने या परम तत्व की प्राप्ति के लिए है। वाल्मीकि के अनुसार यह भौतिकवादी संसार है, लेकिन आध्यात्मिकता इससे परे एक आलौकिक शक्ति है। भौतिकता का सम्बन्ध देहतत्व से है जबकि आध्यात्मिकता का सम्बन्ध आत्मा से है जो अजर, अमर, अविनाशी है। जबकि भौतिकता नश्वर है।

रामायण में राम ने जाबालि की नास्तिक विचारों को काटकर सत्य पर प्रतिष्ठित लोक वेद वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा की है। (वा. रा. अयोध्याकांड 2/01.9,5)

इस प्रकार हम देखते हैं कि रामायण एक नैतिक ग्रंथ और मौलिक ग्रंथ है। अन्य रचनाकारों के समक्ष उनकी रचनाशैली के लिए अनेक प्रेरक ग्रंथ रहे लेकिन वाल्मीकि के सम्मुख प्रेरणाप्राप्त करने के लिए कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं था। वास्तव में यह अद्वितीय महाकाव्य है। यह महाकाव्य भारतीय संस्कृति के महत्वपूर्ण आयामों को प्रतिबिम्बित करने वाला साहित्य रूप में अक्षय निधि है। आधुनिक युग में जितने भी रामचरित पर ग्रंथ है वे सब वाल्मीकि रामायण से प्रेरित है। इस महाकाव्य में प्रकृति चित्रण, संवाद संयोजन तथा विषय का सुंदर प्रतिपादन किया गया है।

वाल्मीकि रामायण में दर्शन, राजनीति, नैतिकता, शासन की कुशलता, खगोलशास्त्र तथा मनोविज्ञान का विशद वर्णन सिद्ध होता है। जब तक इस पृथ्वी पर मानव का अस्तित्व है, राम अपने चरित्र

से विश्व को आदर्श, मर्यादा, नैतिकता और समस्त चारित्रिक गुणों की शिक्षा देते रहेंगे। रामायण की महत्ता कभी समाप्त नहीं होगी। जब तक सृष्टि में सूरज चाँद है मनुष्यों की श्रद्धा कभी भी रामायण से कम नहीं होगी। कोई भी युग हो रामायण कालजयी है।

वाल्मीकि ने राम का वर्णन ईश्वर के रूप में नहीं एक मर्यादित परूष, के रूप में किया है जो बाद के लेखकों ने बदल दिया । वास्तव में उनके चरित्र के साथ यह अन्याय है क्योंकि ईश्वर के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। लेकिन जब राम को एक व्यक्ति के रूप में देखा जाए तो अदम्य साहस, अपार प्रेम, नैतिकता के प्रतिरूप, सत्यता का उदाहरण, सर्वश्रेष्ठ वीर, कुरीतियों के विरोधी, विनम्रता कृतज्ञता के साक्षात प्रतिबिम्ब, अल्प साधनों में भी उच्च उद्देश्यों को प्राप्त करने का विश्वास और सामर्थ्य, सम्पूर्ण मानवता के हित के कार्य में रत दिखाई देते है । इस प्रकार वे भारतीय संस्कृति के प्रतीक हैं, प्रतिनिधि हैं यही कारण है कि भारतीय जनमानस के हृदय सिंहासन पर विराजमान हैं।

रामायणकालीन जीवनदर्शन के सम्बन्ध में यह कह सकते हैं कि उस समय समाज में व्यक्ति चाहे वह आर्य परिवारों से सम्बन्धित हो अथवा अनार्य परिवारों से सांसारिक सुख वैभव में जी रहा हो या तपस्यारत हो उनका जीवन दिशाहीन या सिद्धान्तहीन न होकर व्यक्तित्व प्रधान था। समाज का प्रत्येक वर्ग मानवीय गुणों की यथार्थता समझता था और अमानवीय व्यवहार का त्याग करता था।

वाल्मीकि ने जीवन के सम्यक एवं संयमित चलाने के लिए चार पुरूषार्थ धर्म, काम, अर्थ एवं मोक्ष की अवधारणा को अपने काव्य में महत्वपूर्ण माना है। दार्शनिक दृष्टि से मूल्यों का विवेचन नैतिक आधार पर हुआ है। जीवन के लिए जितने अनिवार्य जीवनमूल्य हैं उनको उच्चतम मूल्यों पर प्रतिष्ठित करना एवं उचित- अनुचित, नैतिक-अनैतिक, कर्तव्य-अकर्तव्य जैसे विवेक पर आधारित गहन और विशद विषयों को रामायण में उचित स्थान मिला है। इसके अतिरिक्त परमसत्ता, जगत तथा मन के संगठन पर भी रामायण में सैद्धान्तिक रूप से विचार किया गया है। रामायण की कहानी प्रत्येक व्यक्ति के जीवन से सम्बनध रखती है। रामायण में वाल्मीकि ने सामाजिक आदर्शों, एवं सामाजिक जीवन की मंगलोन्मुखी मान्यताओं का निर्माण किया है। एवं उनका यथोचित निर्वाह करके एक सभ्य, सुसंस्कृत एवं प्रगतिशील समाज की स्थापना की है।

लोककवि होने के कारण वाल्मीकि ने अपने महान ग्रंथ की रचना केवल धरातल पर की है। रामकथा के माध्यम से उन्होंने भारतीय जनता का व्यापक स्तर जीवनोपयोगी नैतिक मूल्यों का पाठ पढ़ाया है। वाल्मीकि की नैतिक शिक्षा का परम उद्देश्य मनुष्यमात्र में नैतिक आचारों की स्थापना करते हुए समाज में सामंजस्य स्थापित करते हुए सुख व कल्याण की भावना का समावेश करना है। रामायण के नायक राम का दृष्टि में सत्य एक साधन है और साधेय है लोककल्याण। **'सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नानास्ति परं पदम्।'**

वाल्मीकि ने काम क्रोध आदि मनोविकारों पर विजय पाने पर विशेष बल दिया है क्योंकि ये मनोविकार विनाश का कारण हैं। वाल्मीकि रामायण में उर्वरा शक्ति इतनी है कि इस पर जितना अनुसंधानपरक कार्य किया जाए उतना ही शेष रह जाता है। रामायण का प्रत्येक पात्र, काण्ड, एवं सर्ग अनुसंधान योग्य है। रामायण किसी धर्म विशेष के लिए नहीं वरन् मानव जाति के लिए कल्याणकारी है।

557/6, पीर वाली गली
शिव शक्ति नगर,
मेरठ

5

असमिया रामायणी परम्परा : एक अध्ययन

डॉ. सत्यजित कलिता

भारतीय संस्कृति में रामायण और महाभारत ऐसे दो महाकाव्य हैं, जिनके साथ भारतीय महाजाति एक सूत्र में बन्धा हुआ है। इतना ही नहीं सारे दक्षिण-पूर्वी एशिया में रामायण की कथा, कहानी, काव्य-नाटक भिन्न-भिन्न रूप में प्रचलित है।

बाल्मीकि रामायण के बाद ग्यारहवी सदी में तामिल, बारहवीं में कन्नड़, चौदहवी में असमिया (माधव कन्दिल रामायण) और पन्द्रहवीं में हिन्दी तथा अन्यान्य भाषाओं में रामायण की रचना हुई। ऐसा ज्ञात होता है कि उससे बहुत युगों के पहले 250 ई. में चीनी भाषा में रामायण की रचना हुई थी।

असम में रामायणी परंपरा

अब तक किए गए ऐतिहासिक शोधकार्यों से रामकथा का असम में कब प्रवेश हुआ यह ज्ञात नहीं हो पाया है। असम में राम का कोई मंदिर निर्माण नहीं किया गया, जबकि पूरे भारतवर्ष में राम और हनुमान की मूर्ति वाले मंदिर बड़ी संख्या में मिलते हैं। हालांकि रामकथा का प्रचलन असम में प्राचीन काल से ही परिलक्षित होता है। उदाहरण के लिए भास्कर वर्मा का दुबि ताम्रलेख (ईसा के 7वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में), राजा ब्रह्मपाल तथा इंद्रपाल के शिलालेख, गोपालवर्मन देव, वैद्यदेव आदि के लेखों का उल्लेख किया जा सकता है। इनके अतिरिक्त तेजपुर में प्राप्त दशावतार के चित्रलेख, गुवाहाटी के उर्वशी, बामुनी पहाड़ और मोरूई भी रामकथा परम्परा का प्राचीनतम उपलब्धि का कुछ प्रमाण है जिसका समय ईसा की 8वीं और 9वीं शताब्दी का निर्धारित हुआ है।[1] यह उल्लेखनीय है कि ईसा की 6वीं शताब्दी से पहले ही वैदिक आर्यों द्वारा प्रागज्योतिष-कामरूप में संस्कृतिकरण की प्रक्रिया आरंभ हो गया था। इसमें रामायण और महाभारत ने अहम भुमिका निभाई थी। वैदिक-आर्यों के बल के माध्यम से रामायण के प्रमुख प्रवाहों के साथ-साथ महाभारत ने इस क्षेत्र में प्रवेश किया। ईसा की 10वीं शताब्दी में रचित कालिका पुराण असम की जमीन की एक महत्वपूर्ण उपज है जो रामकथा संबंधी एक प्राचीन दस्तावेज है जिसमें हमें इस परम्परा की एक उज्ज्वल तस्वीर दिखाई देता है। ईसा की 14वीं शताब्दी में बराही राजा महामाणिक्य के एक प्रमुख दरबारी कवि माधव कंदली ने बाल्मीकि के रामायण का अनुवाद किया जो रामायण का सर्वप्रथम और पूर्ण असमीया संस्करण है। उन्होंने यह कार्य जनता में रामकथा के प्रचार-प्रसार के लिए किया था और अनुवाद कार्य में मूल ग्रंथ के साथ यथोचित न्याय किया था। उनका रामायण आम लोगों के बीच काफी लोकप्रिय है। माधव कन्दलि से पहले हरिबर बिप्र द्वारा रचित 'लव कुशर युद्ध' नामक ग्रन्थ भी उल्लेखनीय है। इस तरह यह परिलक्षित होता है कि असमीया भाषा में शाताब्दियों से रामकथा आधारित अनेक साहित्यिक कृतियाँ रचित हो रही थी जो एक लिखित साहित्य की परंपरा में प्राप्त होता है।

पद रामायण के अन्तर्गत माधव कन्दलि के बाद नाम आता है अनन्त कन्दलि रामायण की। असमिया रामायण साहित्य में इसका स्थान द्वितीय है। यह रामायण पूर्व कवि माधव कन्दलि कृत रामायण के आधार पर ही रचा गया है। महापुरुष शंकरदेव को यह रामायण पसन्द नहीं आया और उसी कारण शिष्य माधवदेव के साथ

मिलकर माधव कन्दली के अधूरे रामायण को पूर्ण रूप दिया क्योंकि माधव कन्दली द्वारा लिखित रामायण के पाँच कांड था। अर्थात अयोध्या से लंकाकांड तक ही प्राप्त होता हैं। आदिकांड और उत्तरकांड को क्रमशः माधव देव और शंकरदेव ने परवर्ती काल में जोड़ा है।

माधव कन्दलि कृत रामायण में कुल 5226 छन्द है। अयोध्या से लेकर लंका कांड तक छन्दों के क्रम इस प्रकार है- अयोध्या 1126, अरण्य 773, किष्किंधा 603, सुन्दर 854 तथा लंका 1870। कथा आरम्भ से लेकर समाप्ति तक बाल्मीकि रामायण का ही अनुसरण करती है। ध्यातव्य है कि माधव कन्दलि ने तुलसीदास या कृतिवास की तरह अन्य पुराण उप पुरणों से कथा का संयोजन नहीं किया है। अनुवाद करते समय कवि ने सतत सौन्दर्य और पाठकों की रूचि के प्रति ध्यान रखा है। कहीं भी साम्प्रदायिक या धार्मिक मतवाद को महत्व देकर काव्यिक सौन्दर्य को विनष्ट नहीं किया है। इस रामायण की रचना करते समय कवि ने राम और विष्णु को अवतार के रूप में स्वीकार किया है अवश्य, पर भक्ति प्रवाह में न बहकर बाल्मीकि रामायण के प्रमुख मानवीय स्तर को परिवर्तित करने की कोशिश नहीं की है। पदों में बार बार ईश्वरत्व थोपकर राम-लक्ष्मण-भरतादि के चरित्र का मानवीय आवेदन विनस्त नहीं किया है। वस्तुतः वाल्मीकि रामायण की तरह माधव कन्दलि के राम भी आदर्श मानव है, सुख-दुखातीत ईश्वर नहीं। इसलिए माधव कन्दलि रामायण एक लौकिक काव्य के रूप में उभरा है।

अनुवाद के सन्दर्य में माधव कन्दलि ने मूल वाल्मीकि रामायण के अपरिहार्य श्लोकों को यथानुरूप रखा है। परन्तु कहीं कहीं मूल कथा को उन्होंने विस्तार प्रदान किया है, यथा- ननिहाल से भरत के अयोध्या लौटने पर मंथरा की वेशभूषा का अतिरिक्त वर्णन। प्राकृतिक सौन्दर्य, युद्ध, मानव सौन्दर्य, स्थान-भवन इत्यादि के वर्णनों में कवि ने अनुपम काव्यिक प्रतिभा का परिचय दिया है। उनके विविध वर्णन में प्रचलित वर्ण, उपवर्ण, पेशे से सम्बन्धित लोगों के उल्लेख भरत के साथ वन से राम को लौटा लाने के लिए प्रस्थान करनेवाली प्रजाओं के वर्णन अपूर्व है।

कन्दलि रामायण में असम की प्रकृति कैसे सजीव हो उठी है, उसे उनके लंका-वर्णन के सन्दर्भ में किये गये विविध वृक्ष फल-फूल के, पेड़-पौधे के चित्रण में देखा जा सकता है।

चतुर्दश शती का असमिया समाज, असमिया जीवन धारण की प्रणाली, शिल्प, धर्म-विश्वास, खाद्याखाद्य, जाति और व्यवसाय, फूल-फल, पशु-पक्षी, राजकीय व्यवस्था आदि के सम्पूर्ण चित्रण न सही पर कुछ आभास माधव कन्दलिकृत रामायण में उपलब्ध है। जनता के जीवन का प्रतिबिम्ब पड़कर कन्दली की रामायण का वर्णन अधिक आकर्षक हुआ है। वस्तुतः माधव कन्दलि कृत रामायण असमीया जीवन मूल्य, भाषा साहित्य तथा संस्कृति की अमूल्य धरोहर है।

आदिकांड रामायण महापुरुष माधवदेव की प्रारम्भिक कृतियों में से एक है। इस रचना का संम्भाव्य काल सोलहवी सदी के छठे दशक में रखा जा सकता है। आदिकांड रामायण केवल अनुवाद ग्रन्थ नहीं है कुछ दृष्टियों से यह एक मैालिक ग्रन्थ है। भगवान के प्रति भक्ति भावना, लीलाभाव, प्रार्थना प्रभृति कुछ लक्षणों ने माधवदेव की रामायण को धर्म ग्रन्थ से जड़ित किया है।

माधवदेव कृत आदिकांड का अनुवाद राम को विष्णु का रूप बताता है और इस प्रकार प्रिय देवता के सभी आराध्य गुणों से अपने नायक को विभूषित करता है। एक अनुवाद होते हुए भी इसमें स्पष्ट विवरण प्रांजल शैली एवं अलंकृत वर्णन के कारण मूल रचना की सी प्रतीत होती है।

माधवदेव कृत आदिकांड की कथावस्तु बाल्मीकि रामायण के आलवा भी पद्मपुराण, रघुवंश, हनुमान नाटक, नृसिंह पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, विष्णु पुराण, हरिवंश, श्रीमद् भागवत आदि विभिन्न शास्त्रों के आधार पर निर्मित हुए हैं।

इसके अतिरिक्त माधवदेव ने प्रान्तीय लोकगाथा, लोककथा आदि का भी आश्रय लिया है। महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव ने उत्तराकांड रामायण की रचना की थी। उत्तराकांड की कथा सीता बनवास से श्रीराम का स्वर्ग गमन तक है।

उत्तराकांड रामायण बाल्मीकि रामायण का अनुवाद नहीं है बल्कि उसके आधार पर वैयक्तिक रूचि के अनुरूप शंकरदेव का मौलिक सृजन है। कुल 762 छन्दों में राम कथा को इसमें विस्तार किया गया है।

महापुरुष शंकरदेव द्वारा रचित अन्य एक कृति राम विजय नाटक की रचना सं 1490 (सन् 1568 ई.- 1625 वि.) में हुई थी। इसमे ब्रह्मर्षि विश्वामित्र यज्ञ की रक्षा हेतु राम लक्ष्मण को अपने साथ ले जाने से सीता स्वयंवर, परशुराम को पराजित करके अयोध्या में प्रविष्ट होने तक का वर्णन है।

दुर्गावर को अनेक पंडित शंकरदेव के भी पूर्व के कवि मानते हैं। दुर्गावर ने 'गीति रामायण' की रचना की थी। गीति रामायण में दुर्गावर ने राम को पुरुषोत्तम अथवा ईश्वर के रूप में न दिखाकर सुख दुख से पीड़ित एक साधारण जन के रूप में दिखाया है। केवल राम को ही लौकिक नहीं वरन् कथा भी लौकिक दिखायी है। सीता को जन विश्वास के अनुसार मन्दोदरी की बेटी बतायी गयी है। लेखक राम की कहानी को एक "प्रेम रसात्मक गीत" के रूप में समाज के सामने लाया है।

कवि ने इस काव्य के माध्यम से उस समय के असम की सामाजिक स्थिति का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत किया है। साधारण ग्रामीन स्त्री-पुरुष के संदेही भाव को भी कवि ने राम अथवा सीता के मुख से प्रकट कराया है। यह रामायण का "ग्राम्य संस्करण" कहा जाता है।

अनंत कन्दलि की "महीरावण वध" भी राम कथा से सम्बन्धित है। कवि ने इसे लोक समाज में प्रचलित कथा के आधार पर रचना किया था।

रघुनाथ महंत का कथा रामायण केवल असमिया साहित्य में ही नहीं, भारत की किसी भी भाषा में गद्य में रचित इतना प्राचीन रामायण और नहीं है। 'देव विजय' नामक एक जैन लेखक ने सन् 1596 ई. में 'रामचरित' नामक एक गद्य पुस्तक प्राकृत भाषा में रचना की थी। गद्य रामायण का भारतीय भाषा का यही सम्भवतः सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। किन्तु आधुनिक भारतीय भाषा में "कथा रामायण" ही प्राचीनतम ग्रन्थ है।

मौखिक परंपरा - एक विहंगावलोकन

साहित्य की मौखिक पंरपरा लिखित परम्परा से कहीं पुरानी है। समाज में लिखित साहित्य परम्परा मौखिक साहित्य की समृद्ध सांस्कृतिक परंपरा के आधार पर विकसित होता है। यह अक्सर कहा जाता है कि लोकगीत सभी कविता की माँ है और लोककथाएँ सभी कहानियों के पिता है। निःसन्देह रामकथा मूलतः महाकाव्य के बजाय एक पारिवारिक कहानी है। इसलिये वैचारिक दृष्टिकोण से देखने पर अनुभव होता है कि लोक में रामायण का प्रभाव किसी भी अन्य कालजयी कृतियों की तुलना में कही अधिक और गहरी हैं। पारंपरिक रूप से असम के लोक समाज में प्रचलित विभिन्न प्रकार के लोकगीत, बारमाही और विलाप-गीत, दिहानाम, बियाहगीत या विया-नाम (विवाह गीत), आइनाम, झुमुर-गीत, तुलसी गीत, शिव-शिवा गीत, नावरीया-गीत (नौका गीत) आदि लोकप्रिय गीतों में मौखिक रामायणी साहित्य के अनेक उपादान प्राप्त होते हैं। प्रदर्शन कला के रूप में इस प्रकार के सैकड़ों गीत प्राप्त होते हैं।

कामरूपी लोकगीत में बहुत ही लोकप्रिय नाटकीय तत्व राम और सीता के संवाद रूप में प्राप्त होते है। सीता राम के साथ वनवास में जाना चाहती हैं, राम पहले तो उनका विरोध करते हैं परन्तु अंत में उससे सहमत हो जाते हैं। गीत इसप्रकार की हैं-

"मयो बने जाओ स्वामी हे
हे स्वामी, नकरा नइरास
तोमार लगत स्वामी खाटिम बनवास हे
मयो बने जाओ स्वामी हे।"[2]

(हे स्वामी, मुझे भी आपके साथ वनवास में जाने की अनुमति दीजिए। हे मेरे पति, मैं आपसे निवेदन करती हूँ, मुझे निराश न करें, मैं भी आपके साथ वनवास जाना चाहती हूँ।)

विवाह गीत

साधारणतः लोकगीतों के निर्माण में नारी बहुत ही कुशल हैं। वे लोकगीतों में अपने अनुभवों, और पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप से प्रचलित पारंपरिक विश्वासों को अभिव्यक्त करती हैं। लोक समाज ने राम और सीता को आदर्श दम्पति के रूप में ग्रहण किया। लोग हर दुल्हे की तुलना राम से और हर दुल्हन की तुलना सीता से, पिता की तुलना

महाराज जनक से और हर गाँव की तुलना अयोध्या या मिथिला से करते हैं। विवाह गीत के एक उदाहरण निम्नलिखित है-

"पाणत पत्र लेखि दिलाहि आइदेउ
पाणत पत्र लेखि दिला;
सेई पत्रखान पाये रामचन्द्रइ
अलंकार पठाइ दिला।
* * *
मारार अलंकार थोवा काटि करि
बापेरार अलंकार थोवा;
रामे दि पथाइछे विचित्र अलंकार
हाते जोर करि लोवा।"[3]

(राजकुमारी ने एक पाण की पत्ती पर पत्र लिख भेजा था। वह पत्र प्राप्त कर रामचंद्र ने उन्हें गहनें भेज दिया। ए राजकुमारी, अब अपने माता-पिता के गहनों को उतार कर रख दें। राम ने तुम्हारे लिए विविध प्रकार के गहनें भेजा है। उन्हें हाथ जोड़कर ग्रहण करें।)

तुलसी गीत

असम के समाज में काति बिहु (अश्विन-कार्तिक महीने की संक्रांति) के दिन तुसली के पवित्र पौधे की पूजा करने की परम्परा है। बिहु के दिन संध्या होने पर गाँव के लोग एकत्र होते हैं और घर-घर जाकर रामायण की कथा पर आधारित गीत गाते हैं। उदाहरण के लिए-

"तलसीर गोरे गोरे मृग पहु चरि फुरे।
ताके मारिबाक लागि राम जतन करे।।
राम गैला मिरग मारिबा लक्ष्मण गैला लरि।
लंकार रावणे पाइ सीताक निला हरि।।
मरि गेल तुलसी सरि गेल पाहि।
गुरखा चलि नाम धरे उथे जात जात।।"[4]

(तुलसी के पौधे के आस-पास हिरण चरता है, राम उसे मारने का प्रयास करते हैं। वह हिरण को मारने के लिए आगे बढ़ता है। लक्ष्मण दौड़ते हुए राम का पीछा करता है। उसी अवसर में लंका का रावण सीता का हरण करते हैं। तुलसी की मेत हो जाती है। उसके पत्ते गिर जाते है।)

गाथागीत

जिन गीतों में लोक विश्वास पर आधारित कथा का वर्णन किया जाता है उसे गाधागीत कहा जाता है। बारमाही यानी बारह महीने का गीत या ऋतु गीत असमीया लोक समाज में प्रसिद्ध है। सीता बारमाही, राम बारमाही, तारा हारमाही, लव-कुश के गीत, कैसल्या के गीत आदि ऐसे गीत हैं जिनके माध्यम से रामकथा की अभिव्यक्ति होती है। उदाहरण के लिएः

माये बाइपेर घरत
शांति नुजुरे तोर गाव
राम हेना स्वामी पाला
कौशल्या जार माव।[5]

(हे सती, हे शान्ति, अपने माता-पिता के घर के निवास में आपके शरीर को संतुष्टि महसूस नहीं होती है, आपको राम जैसे पति मिल रहे हैं जिनकी माता कैशल्या है।)

भक्ति गीत

असम में संगीत की एक समृद्ध परंपरा है। महापुरुष शंकरदेव और माधवदेव द्वारा रचित बरगीत, वैष्णव परम्परा के अन्य कवियों द्वारा रचित भक्तिगीत, वंदना, स्तुतिगीत, भटिमा आदि भक्तिगीत के उदाहरण है। इनमें से कुछ रामकथा पर ही आधारित हैं। ईसा की 15वी-16वी शाताब्दी में शंकरदेव ने छः और माधवदेव ने पन्द्रह बरगीतों की रचना रामकथा के आधार पर की थी।

कहा गया है कि राम की भक्ति मुक्ति से श्रेष्ठ है। कलि युग में भगवान राम और कृष्ण की भक्ति के अतिरिक्त उपासना का अन्य कोई श्रेष्ठ साधन नहीं है। यह उल्लेखनीय है कि महापुरुष शंकरदेव का पहला बरगीत राम भक्ति पर आधारित था, उस प्रसिद्ध बरगीत की कुछ पंक्तियाँ उदाहरण के लिए उद्धृत किया गया हैः

ध्रुव

मन मेरी राम चरणहिं लागु।
तई देखना अंतकु आगु।।
मन आयु खने खने टुटे।
देखु प्राण कोन दिना छुटे।।[6]

(हे मेरे मन, तू राम के चरणों में शरण ले; तू पहले अंतकाल को देख। हे मेरे मन, हर पल जीवन का क्षय हो रहा है, किसी भी पल यह समाप्त हो सकता

है।)

ओजा-पाली की वंदना

ओजा-पालि प्राचीन काल से असम में प्रचलित एक विशेष लोकप्रिय प्रदर्शन कला-रूप है। ओजा-पालि दो प्रकार के होते हैं- पहाल है सुकनानी ओजापालि और दूसरा है वियाह गोआ ओजापालि। ओजा-पालि अनुष्ठान के आरंभ में ओजा द्वारा गाए गए प्ररंभिक भक्ति गीत को वंदना कहा जाता है । सुकनानी ओजा मुख्य विषय सुनाने से पहले इस प्रकार राम की वंदना गीत गाते हैं-

दिहा- प्रथम वंदिबो राम मुकुतिपद जार
प्रभु राम कमल लोचन।
अयोध्यापति राम तनु दुर्वादल श्याम
प्रणाम करो कौसल्या नन्दनर।। आदि[7]

इन गीतों के अतिरिक्त रामायणी परम्परा पर आधारित अन्य अनेक भक्ति गीत प्राप्त होते हैं। असम में वैष्णव परंपरा से संबंद्ध महापुरुष शंकरदेव और माधवदेव द्वारा रचित अंकिया नाट अथवा अंकर नाटर गीत (एक अंक का नाटक), कीर्तन घोषा और नामघोषा, कथा गीत, भटिमा (स्तुतिपरक भजन), नाम, दुर्गापुजार गीत आदि इसके उदाहरण के रूप में उल्लेख किया जा सकता है।

असम की जनजातीय समाज में रामकथा की परम्परा

भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र में स्थित असम और उसके पड़ोसी राज्यों की जनजातीय समाज में भी रामायण की एक गरिमामय मौखिक परंपरा विद्यमान है। असम के बोड़ो-कछारी, राभा, मिसिंग, कार्बि और असम के समतल मैदानी भाग में निवास करने वाले अन्य आदिवासी समुदायों में भी रामायण महाकाव्य की प्रवहमान परम्परा के साथ संबंध और निकटता विद्यमान है और गीत, गाथागीत और कथाओं आदि की एक गरिमामय सांस्कृतिक पंरपरा दृष्टिगोचर होता है।

पर्वतीय क्षेत्र में रहने वाले आदिवासी लोग, जैसे मिसिंग, गारो, मिजो, कार्बि, दिमासा, जयंतिया आदि के साथ अन्य समुदाय भी रामायण से भलीभाँति परिचित हैं।[8] कार्बि जनजाति तिब्बती-चीनी परिवार की तिब्बत-बर्मी शाखा के अंतर्गत आते हैं। कार्बि लोगों की अपनी भाषा में रामायण की रचना हुई है और उनकी भाषा में इसे सबीन-आलुन (राम-लखन-केपलोंग) के नाम से जाना जाता है।[9]

सबीन-आलुन माधव कंदली रचित रामायण के असमीया संस्करण का ही एक गाथागीत के रूप में निर्मित एक लोकसंस्करण है। सबीन का मतलब है मूल गायक और आलुन का मतलब है गीत। ज्ञातव्य है कि कुछ वर्ष पहले ही सबीन-आलुन अपने मौखिक परम्परा से लिखित रूप में आया है। असम के प्रमुख जनजाति के रूप में कार्बि लोग मुख्य रूप से नगाँव, कामरूप, शिवसागर और उत्तरी कछार की पहाड़ियों के निवासी रहे हैं। असम के कार्बि जनजाति की तरह ही तिवा या लालुंग जनजाति में भी रामकथा की अपनी परम्परा परिलक्षित होती है। हाँ, वे अवश्य ही मौखिक रूप में विद्यमान है।

खामटि जनजाति के लोग मूल रूप से असम के उत्तर-पूर्वी भाग के निवासी है। यह बौद्ध धर्मावलम्बी पर्वतीय जनजाती ताई जनजातीय समूहों से संबंधित है। इनमें रामायण की अपनी पांडुलिपि है जो लिक-चाओ-लामान (यानी श्रीरामकाव्य) के रूप में जाना जाता है। इसमें भगवान बुद्ध राम की कथा सुनाते हैं। इसमें 12678 श्लोक होते हैं।[10]

असम के गरिमामय ताई-आहोम समुदाय में भी रामायण की प्राचीन लोक परंपरा विद्यमान है। फाके, खामयांग, आइतानि और तुरंग ताई-आहोम समुदाय के अन्तर्गत आते हैं। उनके समाज में भी रामकथा के प्रवाह परिलक्षित होता हैं और रामायण का उनका संस्करण खामटि संस्करण के समतुल्य है। थाईलैंड मे इसे रामाकीन कहा जाता है।

असम के बोड़ो-कछारी जनजाति इंडो-मंगोलॉयड समुदाय के एक सबसे प्राचीन जनजाति है। वे असम प्रान्त के वास्तविक आदिवासी हैं। उनके मुख्य धार्मिक उत्सव बाथौ महोत्सव के आयोजन में

राम-तुलसी का संबंध बहुत ही लक्ष्यणीय है। राम, सीता तथा तारा का नाम उनके बीच लोकप्रिय है। असम के आदिवासी समाज की भावनाओं, मान्यताओं और जीवन शैलियों को प्रतिबिम्बित करने वाली रामायणी परंपरा इस क्षेत्र की संस्कृतियों का अभिन्न तत्व है।[11]

उदार रामायणी परंपरा ने हिंदू धर्म के तथाकथित निम्न जाति के लोगों या आदिवासी लोगों की रीति-रिवाज, कर्मकांड, विचारधारा और जीवन जीने की कला को काफी हद तक प्रभावित किया और उन्हें बदल कर उच्च वर्ग के हिंदू के अनुकरण में जीवन जीने का तरीका अपनाने में सहायता की। बुद्धिजीवियों ने इस प्रक्रिया को संस्कृतिकरण की संज्ञा दी है।[12]

निष्कर्ष

इस अध्ययन के माध्यम से यह देखा गया है कि रामायणी परंपरा के प्रचार के क्षेत्र में कथक एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में कार्य करता है जो मिथकों, किंवदंतियों, लोकप्रिय कहावतों, कहानियों का निरन्तर निर्माण करता रहता है और ये आम लोगों के बीच अधिक परिचित हैं। इसलिए रामायण की मौखिक परंपरा समाज के साथ-साथ राष्ट्र को भी प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है। हमारे महाकाव्य युग की केवल रामकथा ही एक ऐसा शक्तिशाली तत्व है जो अपनी मानवता, प्रेम, स्नेह और कर्मयोग की भावना के माध्यम से हमारे भारतीय समाज को अधिक शक्तिशाली बनाता है।

संदर्भ सूची :

1. दत्त, बी. : असम में राम-कथा और उसके पड़ोस की लोकप्रिय और लोक परंपरा (गु.वि) जर्नल, Vol.-33
2. नेओग, एम (सं) : चताई परबत और चिरिलोत, बानी प्रकाश, गुवाहाटी, 1964
3. शर्मा, एच. के. (सं) : कामरूपी लोक गीत संचयन, गुवाहाटी, 1978
4. शर्मा, एच. के. (सं) : कामरूपी लोगकीत संचयन, गुवाहाटी, 1978
5. नेओग, एम (सं) सेशन-सीओईटी पी. 72
6. काकति, बाणीकांत : शंकरदेव के अनूदित कार्य, पृ. 37
7. शर्मा बरुआ, एऩ (सं) : गीत-मलाकी-वंदना, पृ 77-78
8. बरुआ, बी : असम, बंगाल और उड़ीसा की मौखिक रामायणी परंपरा पर एक अनुकूल अध्ययन, गुवाहाटी, 2011, पृ 167
9. दासगुप्ता पी.के. : युद्ध खासी, लोकगीत, जनवरी-फरवरी, 1961 के मिथकों में हिन्दू देवी-देवताओं की भूमिका।
10. दत्त, बी. : उपर्युक्त, पृ 11
11. कौण्डिण्य, आर. : खामटि रामायण परिचय, परिषद पत्रिका (हिंदी), 2005, नं़ 03
12. श्रीनिवास, एम. एन. : आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, नई दिल्ली, 1078, पृ 6

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
गुवाहाटी महाविद्यालय गुवाहाटी,
असम

6 भारत के दक्षिणी प्रांत केरल की आदिम वन्यजातियों में रामायण कथा

प्रो.(डॉ.) एस. तंकमणि अम्मा

रामायण कथा की देशकालजयी संजीवनी शक्ति को रेखांकित करते हुए साक्षात् विधाता ने जो आशीर्वचन दिया था--

"यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्चमहीतले
तावद्रामायण कथा लोकेषु प्रचरिष्यति।।"[1]

(अर्थात् जब तक पृथ्वीतल में पहाड़ एवं नदियों का अस्तित्व रहेगा, तब तक रामायण संसार में प्रचलित रहेगी।) वह अक्षरशः सत्य सिद्ध हुआ है। देश-काल की सारी सीमाओं को लांधकर विश्व के मानचित्र में रामकथा ने महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। भारतवर्ष में तो रामकथा मानो जन-जन के मन-प्राण में घुल-मिल गयी है तथा वह आज भी उनका पथ-प्रदर्शन कर रही है। सच पूछा जाए तो जनमानस में राम कथा की चिरप्रतिष्ठा केवल इसीलिए नहीं हुई है कि राम सर्व दिव्य गुण विभूषित थे, आदर्श राजा थे अथवा रामराज्य के प्रतिष्ठापक थे, किन्तु इसलिए भी है कि वे दीनदयालु थे, पतितपावन थे, लोकरक्षक थे तथा सर्वोपरि आदिम वन्यजातियों के हितचिंतक एवं संरक्षक थे। सचमुच वनवासी एवं वनजनरंजक राम ने लोकमानस में अमर प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है।

वैसे तो वन एवं वन्यजातियों के साथ रामकथा का अटूट सम्बन्ध है। आदिकाव्य के प्रणेता वाल्मीकि स्वयं वनवासी मुनि थे। यही नहीं प्रचलित ऐतिह्य के अनुसार वाल्मीकि पहले लूटमार करके जीविका चलानेवाले वन्यजाति के (निषाद) रहे थे। बाद में सप्तर्षियों के मुँह से संप्राप्त राम मंत्र के बल पर तपस्या में लीन उस निषाद को वाल्मीक ने घेर लिया था। आखिर घोरतम तपस्या से प्राप्त ज्ञान ने उन्हें उस वाल्मीक से मुक्त किया था और वे आत्मज्ञानी मुनि ही वाल्मीकि बन गए थे। इस कथा में वास्तविकता का अंश चाहे रहे या न रहे, किन्तु इसमें मतभेद कदापि नहीं रहेगा कि आदिकाव्य गंभीरतम तपस्या से संप्राप्त महान अमृतोपम उपलब्धि ही है। आदिकाव्य के प्रणयन की प्रेरणा भी तो उन्हें एक निषाद द्वारा क्रौंच मिथुनों में से एक की हत्या के दारुण दृश्य से प्राप्त हुई थी।

आदिकाव्य रामायण की बात पर गौर करें तो रामकथा की पृष्ठभूमि के तौर पर रामायण में मुख्यतः शहर, जंगल, आश्रम आदि ही वर्णित हैं। इनमें सबसे प्रमुखता वनभूमि को ही प्राप्त हुई है। सचमुच रामायणकाल में भारतभूमि का अधिकांश भाग जंगली प्रदेश ही रहा था। घोरातिघोर जंगल भी उनमें शामिल थे। यह भी ध्यातव्य है कि वानप्रस्थ तत्कालीन जीवन-चर्या का महत्त्वपूर्ण अंश भी रहा था।

"रामायण कथा राम के राज्यशासन से अधिक कहीं उनके वनवास की ही कथा है। राजकुमार राम सोलह वर्ष तक नहीं पहुँचे थे कि महर्षि विश्वामित्र उन्हें यागरक्षा हेतु वन ले चलने के लिए आ जाते हैं।"[1] तबसे वनभूमि के साथ राम के संपर्क का श्रीगणेश होता है। फिर विवाहोपरांत अपने पिता के वचन के पालन के लिए राम जब पत्नी सीता और भाई लक्ष्मण के साथ चौदह वर्ष के वनवास के लिए निकलते हैं तब से राम का जीवन वन-जीवन से खूब घुल-मिल जाता है।

वन-वासी राम केवल वन के ऋषि-मुनियों से ही मिलते-जुलते नहीं हैं बल्कि विभिन्न वन्यजातियों के साथ भी उनका निकटतम संपर्क हो जाता है। वनवासी राम न केवल मुनिजनों के मन को मोह लेते हैं; वे तो निषाद गुह, शबरी, वानर, गिद्ध, भालू, अन्य पशु-पक्षी सब को भी मोह लेते हैं। आधुनिक शोधों के आलोक से इस ओर इशारा प्राप्त होता है कि वानर, गीध, भालू आदि उस काल के केवल पशु-पक्षी नहीं

रहे थे; वे सब तत्कालीन वन्यजातियाँ रही थीं। यों तो इन वन्यजातियों के सुधार का प्रथम श्रेय भी वनवासी राम को प्राप्त होता है।

सीताहरण पर अपने को एकाकी पानेवाले राम वनवासियों से ही नहीं वन के हर एक पशु-पक्षी एवं पेड़-पौधे के साथ भी चिरमैत्री स्थापित कर लेते हैं। यों राम का जीवन जो बचपन से ही वन-प्रांतों से जुड़ गया था, अब तक दृढ़ आत्मीयता को प्राप्त कर लेता है। रामायण कथा का अंतिम अंश (उत्तर रामायण) तो पूरा का पूरा वन में ही घटित हो जाता है।

"रामायण' से मतलब है राम का अयन, राम की गति, यात्रा अथवा मार्ग। वस्तुतः दाशरथी राम ने राज्यशासन से अधिक वनवास करके जनता के सम्मुख एक नया जीवन-पथ ही खोलकर रख दिया था। दण्डकारण्य से अयन करते हुए आपने निषादों, वानरों, गीधों, भालुओं, व राक्षसों का सुधार किया, उन्हें सत्य और धर्म का मार्ग दिखा दिया। इस प्रकार वन्यजातियों से भरपूर दण्डकारण्य से अयन करते हुए राम ने दुनियाँ के सम्मुख एक आदर्श जीवन का मार्ग प्रस्तुत कर दिया। यही कारण है कि महर्षि वेदव्यास ने राम की महत्ता के मूल में उनके वनवास को मान कर कहा है--

"त्यक्त्वा सुदुस्त्यज सुरेप्सित राज्यलक्ष्मी।
धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम्।"[2]

अपना वनवास काल मात्र ऋषि-मुनियों के आश्रम में न बिताकर, वन्यजातियों के साथ उनके सुधार में लगे रहकर राम ने वस्तुतः भारतीय वन्यजातियों के साथ ऐतिहासिक नाता ही जोड़ लिया है। इस संदर्भ में इसकी परख अत्यंत दिलचस्प एवं सार्थक विषय रहेगा कि ऐसे राम की प्रतिष्ठा आदिम वन्यजातियों में कहाँ तक और कैसी है तथा रामकथा उन में कहाँ तक प्रचलित है।

भारत जैसे विशाल देश में जहाँ पहाड़ों, घाटियों व छोटे-बड़े जंगलों की कोई कमी नहीं है, विविध प्रकार की वन्यजातियों का आवास है। अपने-अपने अजनबी आचार-विचारों व प्रकृतियों के कारण वे बाहरी दुनियाँ से अलग अपनी अस्मिता को बनाये रखते हुए नितांत विलग जीवन बिताते हैं। सरकारी आंकड़ों के अनुसार भारत भर में दो सौ बीस से ज़्यादा वन्यजातियाँ हैं। माना जाता है कि ये ही वन्यजातियाँ देश में पहले-पहल बस गयी थीं। आदिमकाल में बसे हुए होने के कारण ये जातियाँ आदिम जातियाँ भी मानी जाती हैं। पहाड़ी जाति, गिरिजन आदि नामों से भी ये जातियाँ अभिहित हैं। चूँकि समस्त वन्यजातियों के अध्ययन की पटभूमि काफ़ी विस्तृत है, अतः यहाँ केरल की वन्यजातियों का एक सामान्य परिचय मात्र दिया जा रहा है।

भारत के सुदूर दक्षिणी छोर में स्थित एक छोटा सा सुन्दर प्रांत है केरल। उसके पूरबी ओर गगन चुंबी चोटियों वाला सह्य पहाड़ है जिस पर स्थित घने जंगलों में तथा घाटियों में विविध प्रकार की वन्यजातियों का बसेरा है। ऐसा ऐतिह्य है कि उत्तर भारत से दक्षिण की ओर आए मुनि अगस्त्य ने वन्यजातियों की सृष्टि की है। अगस्त्य मुनि ने दक्षिण भारत के घोर जंगलों को काट-छांट कर आवास-योग्य बनाया। आज भी विश्वास किया जाता है कि मुनि अगस्त्य ने समूचे दक्षिण भारत को परास्त कर लिया था। अपनी विजय-यात्रा के दौरान मुनि ने जगह-जगह पर आश्रम भी स्थापित किए हैं, जहाँ लोगों का विश्वास है कि मुनि के पद चिह्न आज भी मौजूद हैं। त्रिवेन्द्रम जिले के नेय्याट्टिनकरा तालुके में जो "अगस्त्यमुटि' (अगस्त्य श्रृंग) है वहाँ बुजुर्गों के अनुसार मुनि अब भी विराजमान हैं।[3]

वेद, पुराण, इतिहास आदियों में आर्येतर जिन निषादों का रूपवर्णन मिलता है उनसे इन वन्यजातियों का बाहरी रूप मिलता-जुलता है। "भागवतपुराण' में निषाद कौए जैसे काले-कलूटे, छोटे कदवाले और चपटी नाकवाले के रूप में वर्णित है। उन्हीं के समान आकारवाले लोग केरल की वनस्थलियों में अब भी मौजूद हैं। नृतत्वशास्त्रियों की राय में केरल की "आनमुटि' (जो सह्य पहाड़ की सब से ऊँची चोटी है।) में, जहाँ ऐसे रूपवाले बड़ी संख्या में पाए जाते हैं, वे अवश्य हमारे पुराणों में वर्णित निषादों की वंश-परंपरा के हैं।

आम तौर पर विश्वास किया जाता है कि केरल के

आदिम निवासी "नीग्रो' जाति के रहे थे। काले-कलूटे, छोटे कदवाले तथा घुंघराले बालों वाले इन नीग्रो लोगों की परंपरा आज भी केरल के पहाड़ी-प्रदेशों में पायी जाती है। "कानिक्कार', "मलंपंडारम्',"पणियन' आदि वन्यजातियाँ इसी वर्ग की मानी जाती हैं। तदनंतर लंबे सिरवाले, तथा चमटी नाकवाले काले "प्रोटो-ऑस्ट्रलॉयड्' वर्ग की एक जाति यहां आयी। "इरुलर्' "मलवेटन्' आदि इस वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। इन जातियों के बाद द्रविड़ वर्ग के लोग यहाँ आए। इन आदिम निवासियों के आगमन के बारे में विद्वान एकमत नहीं हैं। जो भी हो आज नीग्रो, प्रोटो-ऑस्ट्रलॉयड्, द्रविड सब के सब द्रविड वर्ग के अन्तर्गत माने जाते हैं।[4]

आर्यों के आगमन तक केरल में इन्हीं द्रविड जातियों का प्रभुत्व रहा। जब सुसभ्य आर्य लोग केरल आए तब आर्य-द्रविड संस्कृतियों का संयोग हो गया। किन्तु द्रविड़ों में कुछ, आर्यों की सभ्यता और संस्कृति को स्वीकार करनेवाले नहीं हुए और वे अपनी प्राचीन संस्कृति से ही चिपटकर रहनेवाले हुए। आज की वन्यजातियाँ उन्हीं की वंशपरंपरा में आती हैं। बाहरी दुनिया की सभ्यता और प्रगति को देखते हुए भी उन्हें अनदेखा करके अपने पुराने आचार-विचारों एवं अन्ध विश्वासों के जंजाल में जकड़े हुए पशुतुल्य जीवन बितानेवाले वन्यजातिवालों के बारे में अधिक जानकारी अभी अप्राप्त है। हमारी आदिम संस्कृति और सभ्यता के प्रतीक स्वरूप इन वन्यजातियों की जीवन-रीतियों व आचार-विचारों का सम्यक अध्ययन नितांत आवश्यक है।[5]

सन् 1971 की जनगणना के अनुसार केरल की आदिम निवासियों की संख्या 2,69,356 मानी गयी है। केन्द्र सरकार, तथा केरल सरकार के आँकड़ों के अनुसार केरल में वन्यजातियों के सैंतीस (37) वर्ग हैं। "अटियर', "अरनाटन्', "आलार', "इरुलर', "उल्लाटन', "ऊराली', "एरवालन', "कनलाटि', "काटर', "काणिक्कार', "कुरिच्यर', "कुरुंपर', "नायाटि', "मलंपंटारम', "मलयरयन्', "मलक्कुरवन्', "मुतुवान्', "विषवन्' आदि इनमें मुख्य हैं।

केरल के पूर्वी भाग में स्थित सह्य पहाड़ की घाटियों एवं घोर जंगलों में ही वन्यजातियों का मुख्य आवास है। वयनाट्, अट्टप्पाटि, देविकुलं, इटुक्की जैसे प्रदेशों में वन्यजातियाँ अधिक संख्या में बसती हैं। बी.एस. गुहा के मत में "वयनाट् के कन्याकुमारी तक व्याप्त पश्चिमी घाटियों में भारत की प्रचीनतम वन्यजातियों के लोग रहते हैं।"2 नृतत्त्वशास्त्रियों की यह भी राय है कि केरल की "काटर्' ही भारत की प्राचीनतम वन्यजाति हैं।

वन्यजाति के लोग अपने ढंग के अजनबी जीवन बितानेवाले हैं। इनमें अधिकांश खेतीबारी या शिकार करके जीविका चलाते हैं। घुमक्कड़ प्रकृति की वन्यजातियाँ भी खूब मिलती हैं। धनुष-बाण के प्रयोग में कतिपय वन्यजातियाँ निष्णात हैं। शिक्षा-प्राप्ति को घोरतम पाप समझनेवाले इन वन्यजातियों का धार्मिक जीवन भी अजनबी है। वे मुख्यतः पहाड़ों, पत्थरों, पेड़-पौधों, जानवरों व सर्पों की आराधना करनेवाले हैं। अपनी परंपरा को अक्षुण्ण रखते हुए वे अब भी जंगली-शिव, वन-माता काली, चामुण्डी, भूत-प्रेत आदि की पूजा-उपासना करते हैं, जादू-टोनों में भी इनका अटल विश्वास है।

केरल की वन्यजातियों में रामायण की पहुँच कहाँ तक है, यह सचमुच गंभीर शोध का विषय है, जिसपर कोई काम अब तक नहीं हुआ है। तद्विषयक खोजों से यह स्पष्ट दृष्टिगत होता है कि केरल की कतिपय वन्यजातियों में थोड़ी-बहुत विभिन्नताओं एवं विलक्षणाताओं के साथ ही सही रामकथा अवश्य प्रचलित है।

पालक्काट्, त्रिच्चूर, एरणाकुम जिलों के गिरिप्रदेशों में रहनेवाली एक प्राचीनतम वन्यजाति है "मलयर्'। इसका शब्दार्थ है "पहाड़ी लोग'। इन लोगों के बीच रामकथा प्रचलित है तथा ये लोग अपने को शूर्पणखा की संतान-परंपरा के मानते हैं।

इटुक्की, कोट्टयम् जिलों के पहाड़ी प्रदेशों व जंगलों

में प्रभूत मात्रा में दिखाई पड़नेवाले आदिमवासी हैं "मलयरयर्'। "मलयरयर्' से मतलब है "पहाड़ के राजा लोग।' अपने अभिधान को सार्थक करनेवाले ये सचमुच घोरातिघोर जंगलों और दुर्गम पहाड़ों में ही रहते हैं जहाँ दूसरों की पहुँच नहीं के बराबर हैं तथा जहाँ वे ही स्वयं राजा हैं। ये भी रामकथा से परिचित हैं तथा अपनी उत्पत्ति कथा के रूप में वे रामकथा के एक प्रसंग को मानते भी हैं। उनकी कथा के अनुसार मुनि गौतम तथा उनकी पत्नी अहल्या ही उनके आदिम माता-पिता है। अहल्यामोक्ष वाले रामायणी-प्रसंग पर इनकी गहरी आस्था है। अपनी आदिमाता को मोक्ष प्रदान करनेवाले श्रीराम को वे अत्यधिक आराधना की दृष्टि से देखते हैं। इस जाति का यह विश्वास है कि ये लोग, श्रीराम के द्वारा मोक्षप्राप्ति के अनंतर मुनि गौतम के साथ अहल्या का जो पुनः संयोग हुआ, उससे उत्पन्न संतान-परंपरा के हैं। उनकी राय में अगस्त्य मुनि ही उन्हें उत्तर से दक्षिण लाये थे।

"उल्लाटर' नामक वन्यजाति के लोग इटुक्की, कोट्टयम् जिलों के पहाड़ी प्रदेशों व घाटियों में रहते हैं। सरकारी आँकड़ों के अनुसार इनकी संख्या 3,000 के लगभग है। खेती और शिकार करके मुख्यतः घुमक्कडी जीवन बितानेवाली एक प्राचीनतम वन्यजाति है यह। रामकथा, रामायण तथा रामायणकार वाल्मीकि इन्हें चिरपरिचित हैं। ये यहाँ तक दावा करते हैं कि वे रामायणकार वाल्मीकि की संतान परंपरा के हैं। इनकी ऐसी मान्यता के मूल में शायद यह कारण रहा होगा कि मुनि वाल्मीकि भी पहले उन्हीं के समान वनवासी रहे थे।

कुरवर, वेलर जैसी आदिम जातियों में भी रामकथा प्रचलित है। विवाहादि मंगल मुहूर्तों में सीता की कथा गा-गाकर वधू को सुनाने की प्रथा इन जातियों में पायी जाती है।

त्रिच्चूर, पालघाट् तथा वयनाट् में बसनेवाली एक वन्य जाति है "काटर'। नृतत्त्वशास्त्रियों के मत में यह भारत की प्राचीनतम वन्यजाति है। "काटर' का शब्दार्थ ही "जंगली' है। अनेक लोक कथाएँ इस जाति के लोगों में प्रचलित हैं। उनमें रामकथा का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। काटर में प्रचलित रामकथा केरल की वन्यजातियों में प्रचलित रामकथा की प्रतिनिधि के तौर पर यहाँ प्रस्तुत को जाती है।

इरणियन की पत्नी ने एक शिशु को जन्म दिया। नारायण ने उस शिशु को एक शीशे में बन्द करके एक संदूक में रख दिया। उस संदूक के ऊपर एक धनुष भी रखकर उन्होंने उसे भूमि में गाड़ दिया। खेत जोतनेवाले कृषकों की दृष्टि उस संदूक पर पड़ गयी। उन्होंने धनुष सहित उस संदूक को राजा के हाथों सौंप दिया। राजा ने अपनी बेटो की भांति उस शिशु का पालन-पोषण किया। आपने उसे सीता नाम भी दिया। सीता धीरे-धीरे युवती बन गयी। राजा ने निश्चय किया कि जो भी वीर वह धनुष तोडेगा वही सीता का वरण कर सकेगा।

एक दिन विधिवश "रामर' आये। उन्होंने धनुष तोड़ा और सीता का वरण कर लिया।

एक बार सीता ने अपने घर के सामने एक सुवर्ण मृग को देख लिया। उसके रूप पर मुग्ध सीता ने अपने पति से उसे पकड़ कर लाने का हठ किया। रामर ने सीता के चारों ओर सात रेखाएँ खींचीं और सीता से उन्हें न लांघने का अनुरोध दिया। रामर स्वर्ण मृग के पीछे गए।

एकदम भीख माँगते हुए "रावणर' आया। जबकि सीता भीख देने रेखाओं के उस पार आयी, रावणर उसका हरण करके ले गया।

सीताहरण पर रामर अत्यधिक दुःखी हुए। उन्होंने सीता की खोज में हनुमान को भेजा। हनुमान ने एक बड़े पीपल के पेड़ के ऊपर चढ़कर सीता की खोज की। उसने सात सागरों के उस पार सीता को देखा। हनुमान सरसों का बीज बना और वहाँ पहुँचा। उसने सीता को अपनी पीठ पर उठाकर रामर के पास ले चलने का आश्वासन दिया। किन्तु पतिव्रता सीता उसके लिए तैयार नहीं हुई। रामर को तुरंत सीता के पास लाने की बात कहकर हनुमान लौट गया।

इधर सीता-विरह में व्याकुल रामर ने पहाड़ों, नदियों, वृक्षों, पशु-पक्षियों सब से सीता का वृत्तांत पूछ लिया। आखिर मेंढ़कों से उन्हें पता चला कि रावणर सीता का हरण कर उसे सात सागरों के उस पार ले गया है।

रामर ने सात सागरों के ऊपर इन्द्रधनुष छानकर पुल बनाया और परिजनों और बन्धुओं के साथ वे उस पार पहुँच गये। लंका में रामर और रावणर के बीच घोर युद्ध हुआ। युद्ध में रावणर को मारकर रामर सीता को अपने यहाँ लौटा लाये।

सीता गर्भवती हुई तो लोगों ने उनके चरित्र पर कलंक लगा दिए। एक बार रामर की अनुपस्थिति में उन्होंने सीता को घोर जंगल भेज दिया। रामर लौट आये तो वे अत्यंत दुःखी हुए और सीता को लौटा लाने के लिए उन्होंने अपने छोटे भाई को भेज दिया।

तब तक सीता ने एक बच्चे को जन्म दिया था। बच्चा इतना ह्रष्ट-पुष्ट था की सीता उसे आसानी से उठा भी नहीं पाती थी। एक दिन एक मुनि वहाँ आए और उन्होंने शिशु की देखरेख के लिए एक आया को भेज दिया। एक दिन आया बच्चे को सुलाकर पानी भरने के लिए नदी गयी हुई थी कि एक बंदर शिशु को उठा ले गया। आया लौट आयी तो शिशु को न पाकर रोने-कलपने लगी। मुनि ने अपने तपोबल से उसी रूप के एक और शिशु की सृष्टि की। बाहर बंदर के साथ खेलने वाले शिशु को उठाकर सीता अन्दर आयी तो और एक शिशु को पालने में पाकर चकित हो गयी। वे दोनों शिशुओं को पालने-पोसने लगी।

राम के आदेश पर उनके भाई, शिशुओं समेत भाभी को एक रथ पर बिठाकर लौटने लगे। रास्ते में रथचक्र की कील उखड़ गयी तो सीता ने साहस के साथ अपनी उँगली कील के स्थान पर रखकर रथ को संभाल लिया। अपने देश वापस आने पर लोगों ने यह देख लिया तो सब के सब सन्न रह गए। आश्चर्य की बात यह थी कि सीता की वह उँगली तब भी ज्यों की त्यों रहीं। लोगों ने उसे सीता के पतिव्रत का ही चमत्कार स्वीकार लिया और उन्होंने सीता के चरित्र की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

इस कथा पर एक सरसरी निगाह डालने पर यह स्पष्ट लक्षित होता है कि वन्यजातियों में प्रचलित रामकथा मूलकथा से थोड़ी बहुत भिन्न है। घटना-स्थलों के नाम, कथापात्रों के नाम आदि में भिन्नता दिखाई पड़ती है। घटना क्रमों में भी मौलिक उद्भावनाओं का समावेश दृष्टिगत होता है। उनकी रामकथा में न तो दशरथ है और न उनकी पत्नियों की चर्चा। राम के भाइयों के नाम भी वन्यजातियों में अधिक प्रचलित नहीं है। "लच्मण' (लक्ष्मण) किसी-किसी के लिए परिचित तो है ही।

वन्यजातियों का राम वस्तुतः उनकी ही भांति वीर हैं, उनकी ही भांति धर्मपत्नी के लिए अनगिनत कष्ट सहनेवाले हैं। यह भी देखने लायक है कि उनकी कथा में राम की अनुपस्थिति में ही सीता वन भेजी जाती है और उनके लौट आते ही उसे वापस बुलाने का उपक्रम होता है।

समवेततः केरल की आदिम वन्यजातियों में रामकथा का जो रूप प्राप्त होता है, वह सर्वथा अकृत्रिम है, तथा लोक जीवन को उभारने वाला भी। हाँ, कहीं-कहीं रामकथा में कुछ उलट-फेर अवश्य दिखाई पड़ती है। सचमुच उनकी भावना के साँचे में ढलकर प्रकट हुई रामकथा का "राम' उनका अपना है, उनकी ही भांति वनवासी है, उनकी ही तरह पहाड़ों-जंगलों व पशु-पक्षियों को प्यार करनेवाले हैं। वन्यजातियों के राम में उनकी ही प्रकृति का आरोप हुआ है। कृत्रिमता से वन्यजाति अभी कितनी अछूती है। धन्य धन्य है उनका राम और उनकी रामकथा।

संदर्भ सूची :

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 1.20.2
2. श्रीमद् भागवत, 11.05.034
3. आदिवासिकलुटे केरलं : नेट्टूर पी.दामोदरन (मलयालम), पृष्ठ 28
4. Adivasis : B.S.Guha, Census of India (Kerala) series 10, 1981, p, 15
5. आदिवासिकलुटे केरलं : नेट्टूर पी.दामोदरन (मलयालम), पृष्ठ 41

पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्षा, हिंदी विभाग

पूर्व डीन, केरल विश्वविद्यालय तिरुवनन्तपुरम, केरल

7 भारतीय समाज के नवनिर्माण में सहायक : रामकथा

डॉ. अनुपमा सिंह

गोस्वामी तुलसीदास ने मानस में लिखा है –

हरि अनंत हरि कथा अनन्ता।
कहहि सुनहि बहुविधि सब संता।
रामचन्द्र के चरित सुहाए।
कलप कोटि लगि जाहि न गाए।।[1]

अर्थात् श्री हरि अनंत हैं (उनका पार नही पाया जा सकता) और उनकी कथा भी अनंत हैं। संत लोग उसे बहुत प्रकार से कहते सुनते हैं। श्री रामचन्द्र जी के सुन्दर चरित्र करोड़ कल्पों में भी नहीं गाये जा सकते।

भारतीय रामकथा साहित्य में बाल्मीकि रामायण को 'आदिकाव्य' की संज्ञा दी गयी है।[2] यह एक ऐसा प्रथम या आदिकाव्य है जिसमें रामकथा को विस्तृत एवं भव्य आयाम प्राप्त हुआ। विद्वानों का अनुमान है कि बाल्मीकि के पूर्व रामकथा लोक–जीवन में विविध गाथाओं और उपारव्यानो के रूप में प्रचलित रही होगी, जिसे उन्होंने महाकाव्य का रूप दिया होगा। बौद्ध त्रिपिटक और महाभारत के द्रोण तथा शान्तपर्व में पायी जाने वाली रामकथा के संक्षिप्त रूप प्राचीन गाथाओं पर ही आधारित माने जाते हैं। लोक प्रचलित आख्यानों के आधार पर ही विभिन्न पुराणों, संस्कृत काव्यों एवं नाटकों में भी रामकथा को अपनाया गया। हरिवंश पुराण, स्कंदपुराण, पद्मपुराण, भागवत पुराण, आध्यात्म रामायण, अद्भुत आनंद रामायण, भुशुंडि रामायण तथा अन्य पुराण ग्रंथों द्वारा रामकाव्य का व्यापक प्रचार हुआ।[3] इस प्रकार मध्यकाल तक आते आते रामकथा को अखिल भारतीय स्वरूप प्राप्त हो गया। कश्मीर के क्षेमेन्द्र से लेकर तमिल के कम्बन तक विद्यमान रामकथाकार इसके प्रमाण हैं। पर,बाल्मीकि के बाद रामकथा के प्रचार में तुलसी के मानस का सर्वाधिक योग रहा।

राम भारतीय संस्कृति के आकाश में चमकने वाले सूर्य हैं। यूँ तो प्रायः पुराणों एवं अनेक रामायणों में उनकी कथा–गाथा लिखी मिलती है पर, सर्वाधिक हृदयग्राही बाल्मीकि एवं तुलसी कृत रामायण ही है। अस्तु उन्हीं का प्रचलन भी अधिक है। बाल्मीकि रामायण संस्कृत में है। किसी समय संस्कृत जनभाषा थी। तब वह जनसाधारण के लिए सुलभ–सरल आरै लोकप्रिय थी। पर आज वह विद्वानो की भाषा बन गयी है। आज जनभाषा हिन्दी है और रामचरित मानस हिन्दी की ही एक उपभाषा अवधी में होने के कारण अधिक लोकप्रिय है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि इन दिनों रामकथा सर्वसाधारण को रामचरित मानस से ही प्राप्त होती है। इस ग्रंथ की महिमा इसलिए भी अधिक है कि यह मात्र कथानक या इतिहास वर्णन करने के लिए नहीं लिखा गया है,वरन इसमें चरितनायक की विचारधारा, परिस्थिति, गतिविधि, कार्यप्रणाली एवं रीति–नीति का वर्णन भी किया गया है। जिससे उसके पढ़ने – सुनने वाले के सामने जब उसी प्रकार की कोई समस्या आये, तब उनका हल भी वह आसानी से खोज सके। भारतीय शैली के अनुरुप कथा का प्रारम्भ ईश वन्दना से होता है–

वर्णानामर्थसंधानां रसानां छन्दसामपि।
मंगलानां च कत्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ।।[4]

अर्थात, अक्षरों, अर्थसमूहों, रसो, छन्दों और सब प्रकार से मंगल करने वाली माँ सरस्वती एवं गणेशजी को नमस्कार है या मैं बन्दन करता हूँ। परमात्मा के स्मरण, चिंतन और गुण–कीर्तन के साथ किसी कार्य का शुभारम्भ करने से मनुष्य को सच्चा आत्मबल मिलता है। वह बुराइयों एवं सांसारिक बंधनों में लिप्त न होकर सम्पूर्ण कर्त्तव्यों का पालन एक दार्शनिक की भांति करता है। यह एक व्यावहारिक प्रशिक्षण है कि प्रत्येक शुभ कर्म करने से पहले ईश्वर की आराधना की जाय, ताकि मनुष्य का कदम दोषपूर्ण न हो जाय। वह स्थिरता पूर्वक अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता चले। मनुष्य स्वयं ही वृहद शक्तिपुंज है किन्तु वह स्वार्थवश, मायावश, संकीर्णतावश अल्पशक्तिवाला तथा दीन और दुःखी बना हुआ है। जल–थल तथा नभ में रहने वाले किसी भी प्राणी को बुद्धि, यश, मोक्ष वैभव तथा भलाई की प्राप्ति संतजनों के सानिध्य से ही सम्भव है। सत्संग सब सिद्धियों का दाता है, इससे बढ़कर कोई दूसरा उपाय नहीं है मानस में तुलसीदास ने लिखा है–

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई।
पारस परस कुधातु सुहाई।
विधि वस सुजन कुसंगत परहीं।
फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं।।[5]

अर्थात इस संसार में स्वतः कोई बुरा नहीं होता, संयोगवश लोग बुरी संगति में पड़कर सद्‌गुणों का परित्याग कर देते हैं। वे सत्संगति से फिर वैसे ही ठीक हो जाते हैं जैसे पारस के स्पर्श से कम मूल्य की धातु भी सोना बन जाती है। रामकथा से मनुष्य जीवन में धर्म की आवश्यकता एवं बुराइयों के प्रति सावधान रहने की प्रेरणा प्राप्त होती है, तुलसीदास जी कहते है–

इमि कुपंथ पग देत खगेसा।
रह न तेज तनु बुद्धि सब लेसा।।[6]

अर्थात् जो बुरी राह चलते हैं उनके शरीर का तेज नष्ट हो जाता है और बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, जिससे उन्हें संसार में दुःख ही दुःख प्राप्त होता है। अतः अपने–अपने कर्मो में नीति और धर्म के अनुसार रहना सांसारिक विकारों से दूर रहने का उपाय है। ऐसा करने से व्यक्ति का प्रेम–धर्म के प्रति बना रहता है और वह सुख की अनुभूति करता है। इसे व्यावहारिक जीवन में ढालने वाले व्यक्ति के सांसरिक सुखों में कोई कमी नहीं रहती, यह सुनिश्चित है।[7] रामचरित मानस में जीवन शोधन का उपदेश अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है। तुलसीदास ने बड़े ही सरल और स्पष्ट शब्दों मे दुर्गुणों के स्थान पर सद्‌गुणों को अपनाने की बात कही है। किष्किंधा कांड में ऐसा ही वर्णन आया है, जिसमें लोभ को संतोष से, मदमोह को सहृदयता से, ममता को ज्ञान से जीतने की प्रेरणा दी गयी है। दुष्कर्म रत मनुष्य को मृत तुल्य बताया गया है। लंका कांड में अंगद और रावण के संवाद का उदाहरण प्रस्तुत है –

कौल कामवस कृपिन विमूढ़ा।
अति दरिद्र अजसी अति बूढा।।
सदा रोगवस संतत क्रोधी।
विष्णु विमुख श्रुति संत विरोधी।।
तनु पोषक निन्दक अघ खानी।
जीवत सव सम चौदह प्रानी।।[8]

अर्थात दुराचारी, विषयी, कृपण, मूर्ख, दरिद्र, दुष्कर्मी, रोगी, क्रोधी, नास्तिक, दुर्जन, निंदक, पापी और केवल अपना ही पेट भरने वाले प्राणी जीवित रहते हुए मृत तुल्य हैं, उनसे व्यक्ति समाज और राष्ट्र का कोई हित नहीं हो सकता। वे संसार में भार स्वरुप जीते और मर जाते है। तुलसीदास ने रामकथा में मानवधर्म को स्पष्ट करते हुए लिखा है –

पर हित सरिस धरम नहि भाई।
पर पीड़ा सम नहि अघमाई।।
नर शरीर धरि जे पर पीरा।
करहि ते सहहिं महा भव भीरा।।[9]

अर्थात् दूसरों की भलाई के समान कोई धर्म नहीं है और दूसरों को दुःख पहुँचाने के समान कोई नीचता (पाप) नहीं है। मनुष्य शरीर धारण करके जो लोग दूसरों को दुःख पहुँचाते हैं, उनको जन्म–मृत्यु के महान संकट सहने पड़ते हैं। तुलसीदास ने अपने रामकथा में जिन मानव मूल्यें को संजोया है, वह अनुकरणीय है। उनके रामकथा में जिस सत्य, विवेक, धर्म व मर्यादा का आग्रह है वह कहीं न कहीं मानव धर्म व मूल्यों से जुड़ा हुआ है। वे सत्य को सभी तपों व धर्मो से श्रेष्ठ मानते हैं। सत्य की रक्षा के लिए राजा दशरथ प्राण तक त्याग देते हैं। वे कैकेयी से कहते हैं–

रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्रान जाहुँ बरू वचन न जाई।।
नहिं असत्य सम पातक पुंजा।
गिरि सम होहि कि कोटिक गुंजा।।
सत्य मूल सब सुकृत सुहाए।
वेद पुरान विदित मनु गाए।।[10]

अर्थात रघुकूल में सदा से यही रीति चली आयी है कि प्राण भले ही चला जाय, पर वचन नहीं जाता।असत्य के समान पापों का समूह भी नहीं है। क्या करोड़ों धुँधचियॉ मिलकर भी कहीं पहाड़ के समान हो सकती हैं? सत्य ही समस्त उत्तम सुकृतों (पुण्यों) की जड़ है। यह बात वेद पुराण में प्रसिद्ध है और मनुजी ने भी यही कहा है। सत्य के लिए मृत्यु भी हो जाय तो वह अमरत्व है।

तुलसीदास पारिवारिक और सामाजिक सम्बंधों का उचित निर्वाह करते हुए धर्मानुकूल काम और अर्थ की सिद्धि हर व्यक्ति के लिए श्रेयस्कर मानते हैं[11] वे कहते हैं 'नहि दरिद्र सम दुःख जग माही'। लेकिन आगे चलकर उन्हें बोध होता है कि भौतिकता का व्यामोह व्यक्ति को अन्यत्र न भटका दे। धन, परिवार और समाज के लिए आवश्यक तो है, लेकिन उसके आधिक्य से व्यक्ति कुपथ्य का संवरण न कर ले इसलिए वे कहते है –

संत मिलन सम सुख जग नाहीं।

इस प्रकार वे व्यक्ति को बराबर मानवता के प्रति सचेत करते रहते हैं। लक्ष्मण–मूर्छा जैसे कारुणिक प्रसंग में तुलसी राम को मानवीय धरातल पर खड़ा कर देते हैं। ऐसे प्रसंगों में मानवीय संवेदनाओं का जो साधारणीकरण होता है, उसमें सांसारिक मानव करूणा के सागर में डूबकर हृदय को प्रच्छालित कर भातृत्व प्रेम के करुण सागर में बार–बार डुबकी लगाता है। लक्ष्मण के लिए विलाप करते हुए राम सहज मनुष्य हैं वे कहते हैं –

सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ।
बंधु सदा तव मृदुल सुभाऊ।।
मम हित लागि तजेहु पितु माता।
सहेहु विपिन हिम आतप बाता।।
सो अनुराग कहाँ अब भाई।
उठहु न सुनि मम बच विकलाई।।
जौ जनतेउँ बन बंधु विछोहू।
पिता वचन मनतेउँ नहिं ओहू।।[12]

राम विलाप करते हुए कहते है–हे भाई तुम मुझे कभी दुखी नहीं देख सकते थे। तुम्हारा स्वभाव सदा से ही कोमल था। मेरे हित के लिए तुमने माता–पिता को भी छोड़ दिया। वन में जाड़ा, गरमी और हवा सब सहन किया। हे भाई वह प्रेम अब कहाँ है ? मेरे व्याकुलतापूर्ण वचन सुनकर उठते क्यो नहीं ? यदि मैं जानता कि वन में भाई का विछोह होगा तो मैं पिता का वचन (जिसे मानना मेरा कर्त्तव्य था) उसे भी न मानता।

आचार्य रामचन्द्र शुल ने लोकधर्म की विवेचना करते हुए कहा है कि 'रामचरित मानस के सौन्दर्य द्वारा तुलसी ने जनता को लोकधर्म की ओर आकर्षित किया।'[13] मानव धर्म को सामाजिक आधार की नींव के लिए सर्वश्रेष्ठ घोषित करते हुए विभिन्न आचार्यो ने कहा भी है कि 'जिस प्रकार अग्नि का धर्म है दाहिका शक्ति, उसी प्रकार मनुष्य का धर्म है मनुष्यता।' यदि दाहिका शक्ति हट जाय तो अग्नि का अग्नित्व ही न रहेगा। उसी प्रकार यदि मनुष्यता चली जाय तो मनुष्य एक द्विपद पशु मात्र रह जायेगा।' आचार्य बलदेव मिश्र ने लिखा है कि 'यह मानव–धर्म ही भारतीय भावों के द्वारा व्यक्त होकर सनातन धर्म के नाम से अभिहीत हुआ।' तुलसीदास ने जिस सनातन धर्म की बुनियादी नींव को प्रज्ज्वलित किया, मुरझायें चमन को सींचा, वह उपवन समय पाकर महक उठा। उससे केवल चेतन में ही चेतना का प्रकाश नहीं हुआ, बल्कि जड़ में भी राममय मानवता की ज्योति पहुँच गई। वे अखिल संसार के जड़ चेतन सभी पदार्थो को सम्मान देते हुए कहते हैं –

जड़–चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।।
बंदउँ सब के पद कमल सदा जोर जुग पानि।।[14]

मानवता का यह उत्कर्ष त्याग के साथ मिलकर ठीक उसी तरह महक उठता है, जिस तरह सुहागे के प्रभाव से सोना अपनी चमक विखेर देता है। तुलसी के राम यद्यपि महलों में पैदा हाते` है, पर वे वहीं तक सीमित न रहकर गाँवों एवं नगरों के नर–नारियेां के सुख–दुःख में भी सम्मिलित होते हैं। निषाद, शबरी, अहिल्या, जटायु सब उनकी चेतना में समाहित हैं। सचमुच तुलसीदास ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम में जिस मानवतावादी दृष्टिकोण को पिरोया है वह समूचे रामकाव्य में सर्वोपरि है। उनके राम जीवन्त मानवता की प्रतिमूर्ति बनकर लोगों की सुषुप्त मानवता को सचेत करते हुए दिखाई देते है। राम के अलावा भी अधिकांश पात्र मानवीय पक्ष को उजागर करते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में ''तुलसी के भरत, लक्ष्मण, हुनमान, अंगद, सीता, कौशल्या जैसे पात्र भी हमें प्रेरणा देते है। वे मानव जीवन के किसी न किसी अंग पर प्रकाश डालते है, या उनसे किसी न किसी सामाजिक असंगति की तीव्र आलोचना व्यक्त होती है, या फिर वे मनुष्य के बीच सद्भवना और पर–दुख दूर करने की सद्वृत्तियों को जगाते है।'' डॉ॰ हरद्वारी लाल शर्मा ने लिखा है कि 'ऐसा मालूम होता है कि तुलसी काव्य में एक नहीं दो राम हैं–एक भगवान राम, दूसरे मानुष राम। कई स्थलों पर तुलसी के राम विचलित हाते ` हुए भी दिखाई देते हैं, जैसे–सीता के विछोह, लक्ष्मण–मूर्छा आदि अवसरेां पर। इसका कारण यह है कि तुलसी ने मानस के चरित्र को पुतला या पत्थर की मूर्ति न बनाकर मानव बनाया है। राम जीवंत हैं, संवेदनशील हैं। अतएव कवि ने उनके जीवंत मानव रूप की सर्जना के लिए यत्र–तत्र विकारों की भी कल्पना की है। किन्तु वे विकार नहीं, जीवन के शक्तिशाली प्रमाण हैं। तुलसी का मानस राम की मानवता से लहराता मानसरोवर है। इसकी काव्य शैली अनुपम है। उत्कृष्ट साहित्य और उत्कृष्ट काव्य में जो गुण होने चाहिए वे सभी उसमें विद्यमान हैं। पाषाण हृदय पाठक भी इसे पढ़कर भाव–विभोर हो जाता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह मानवीय अन्तःकरण में छिपे पड़े देवत्व को उल्लसित और

विकसित करता है। यह पाठकगण में निहित पाशविक विचारधारा को दूर कर मानवता एवं देवत्व की ओर बढ़ने की प्रेरणा देते हैं। अपनी विशेषताओं के कारण ही इसने भारतीय जनता के मन एवं हृदय में श्रद्धापूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। रामायण पढ़ने और सुनने में लोग पुण्य मानते हैं। यही वजह है कि उसमें वर्णित आदर्शो को लोग भावनापूर्वक सुनने और हृदयंगम करने में अधिक तत्पर दिखाई देते हैं।

रामकथा में मानव जीवन में समय–समय पर उपस्थित होती रहने वाली विविध समस्याओं का समाधान भी मौजूद है। पारिवारिक जीवन में सामांजस्य कैसे रखा जा सकता है? आदर्श दाम्पत्य जीवन कैसा होना चाहिए ? अभिभावकों का संतान के प्रति और संतान का अभिभावकों के प्रति क्या कर्त्तव्य है ? अनीति के उन्मूलन और न्याय के संरक्षण में कमजारे व्यक्ति भी किस प्रकार अपना योगदान दे सकता है ? कठिनाइयों में धैर्य और साहस कितना उपयोगी होता है? आदि मानव जीवन की सहस्रों ऐसी समस्याएँ हैं जिनका हल आसानी से प्राप्त हो जाता है।[15] इस प्रकार रामकथा एक उत्कृष्ट नीतिशास्त्र की आवश्यकता को पूरा करता है। आज अगणित विकृतियों, समस्याओं, कुंठाओं, उलझनों से भरे समाज को शक्ति एवं सामन्जस्य का प्रकाश देने की नितांत आवश्यकता है। इस आवश्यकता की पूर्ति धर्म एवं आध्यात्म के तत्व ज्ञान को आधार मानकर ही किया जा सकता है। राजनीति, अर्थनीति, समाजनीति आधारित, प्रवृत्तियाँ लोगों को भावनात्मक स्तर पर ऊँचा नहीं उठा सकतीं। संयम, सेवा, सदाचार, उदारता, नीति, न्याय एवं कर्त्तव्य–परायणता जैसे सद्गुण अन्य किसी मंच से विकसित नहीं किये जा सकते, इसके लिए धर्म एवं आध्यात्म का मार्ग ही उपयुक्त है और रामकथा इसे पूरा करने में पूरी तरह सफल है। इसके माध्यम से लोकशिक्षण का कार्य भी आसानी से किया जा सकता है। आज विश्व के सम्मुख अगणित समस्याओं का समाधान रामायण एवं गीता में उपलब्ध है।

नीति और धर्म की मर्यादाओं का उल्लंधन एवं उच्छृंखलता रूके, कर्त्तव्य पालन में श्रद्धा एवं विश्वास बढ़े। यही रामकथा का मूल मंत्र है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने अपने जीवनकाल में अपने कार्य एवं आचरण से जो प्रेरणा दी, उसका अनुगमन करना उनके प्रति सच्ची भक्ति होगी। आवश्यकता इस बात की भी है कि राम भक्ति का वास्तविक प्रयोजन जनसाधारण को समझाया जाय। जन–जन को कर्त्तव्यपरायण, पुरुषार्थी, मर्यादापालक एवं परमार्थपरायण बनने की प्रेरणा दी जाय, यही रामकथा का मूल उद्देश्य भी है। रामायण की शिक्षा है– ऐ मनुष्य, तू राम बनने का प्रयत्न कर। ऐसा कर सका तो सुखपूर्वक उस स्थिति को प्राप्त कर लेगा जिसके लिए नर तनु धारण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। तुलसी मत के इस सनातनी धर्म को अपनाकर महात्मा गाँधी भारत के ही नहीं, विश्व के लोकनायक बने। यह तुलसी–साहित्य की सबसे बड़ी देन मानी जा सकती है। लोकतंत्र के लिए मानवतावादी तेवर को गाँधी ने अपने जीवन–क्षेत्र में यथार्थ किया। वह केवल कथनी बनकर नहीं रही, बल्कि उसे चरितार्थ करके उन्होंने समाज के समक्ष एक ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत किया।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम का जीवन एक दीप है, जिसके उज्ज्वल प्रकाश में जिंदगी की सच्चाइयाँ प्रकाशित हो उठती हैं तथा रामचरित मानस एक ऐसी प्रामाणिक कृति है जो हर पहलू से जीवन की परीक्षा करती चलती है। रामकथा में निहित आदर्शो की अमृतधारा मानव के भटकते मन, शिथिल बुद्धि और थके पगों को गति–स्फूर्ति और संजीवनी प्रदान करती रहती है।[16] गोस्वामी तुलसीदास ने अपने व्यापक जीवन अनुभवों के सहारे रामकथा के परम्परागत छवियों को नवीन अर्थ प्रदान किया। उसे गतिशील बनाकर भावी जीवन की सम्भावनाओं से ओत–प्राते किया। इस प्रकार विराट फलक पर फैले होने के कारण रामकथा समग्र मानव जीवन का चिरनूतन दस्तावेज बन गया है।

संदर्भ सूची :

1. गोस्वामी तुलसीदास रामचरित मानस, गीता प्रेस गोरखपुर, बालकांड दो०, 139/3
2. बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य, का इतिहास, शारदा मंदिर बनारस, 1958, पृ० 67
3. सं० त्रिभुवन सिंह, तुलसी संदर्भ और समीक्षा, तुलसी शोध संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1976, पृ० 68
4. तुसलीदास, रामचरित मानस बालकांड, प्रथम श्लोक
5. तुसलीदास, रामचरित मानस, बालकांड, दो० 2/5
6. तुसलीदास, रामचरित मानस, अरण्यकांड, दो० 5

7. पं. श्री राम शर्मा आचार्य बांड्.मय, मर्यादा पुरुषोत्तम राम, जन जागरण प्रेस मथुरा, 1998 पृ० 12
8. तुलसीदास, रामचरित मानस, लंका कांड, दो० 30/1–2
9. तुलसीदास, रामचरित मानस, उत्तर कांड, दो० 40/1–2
10. तुलसीदास, रामचरित मानस, अयोध्याकांड, दो० 27/2–3
11. शिवधनी पाण्डेय, तुलसीदास के काव्य में चित्रित समाज का स्वरूप, संजय बुक सेंटर वारणसी, 2001, पृ० 43
12. तुलसीदास, रामचरित मानस, लंका कांड दो० 60/2–3
13. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग, 1935, पृ० 170
14. तुलसीदास, रामचरित मानस, बालकांड, दो० 7
15. शिवधनी पाण्डेय, तुलसीदास के काव्य मे ंचित्रित समाज का स्वरुप, पृ० 46
16. भगवान शरण भारद्वाज, रामचरित मानस और आधुनिक जीवन की समस्याएं, लोक वाणी संस्थान दिल्ली, 2004, पृ० 181

सहायक प्राध्यापक,
के॰ बी॰ महिला महाविद्यालय,
(विनोबा भावे विश्वविद्यालय), हजारीबाग

8

हिन्दी काव्य परंपरा में रामायण की अभिव्यक्ति

सिद्धेश्वर प्रसाद सिंह

कोई भी कृति की रचना कवि परंपरा, मूल्य, संस्कृति और समकालीन जीवन–बोध के आलोक में करता है। परंपरा के अंतर्गत उन सभी स्वाभाविक कार्यों आदतों, रीति–रिवाजों का समावेश होता है जो स्थान–विशेष पर रहने वाले लोगों के सहसंबंध का प्रतिनिधित्व करते हैं। परंपरा के भीतर धार्मिक विचारों से लेकर आगंतुक के स्वागत की पद्धति और उसको संबोधित करने का ढ़ंग सब कुछ समाहित है। टी.एस. इलियट 'Pradition and individual talent' नामक कृति में सृजन के लिए परंपरा–बोध को आवश्यक मानते हैं। इसमें धार्मिक सांस्कृतिक, सामाजिक और नैतिक मूल्यों के साथ लोक–पर्व समाहित होते हैं–"Tradition involves all those Habitual actions, Habits and customs, from the most singnificant religious rites to our conventional way of greeting stranger which represent the blood relationship of the same people living in the same palce" [1] (After Strange Gods, page-18)

इलियट परंपरा की प्रासंगिकता वर्तमानत्व में मानते हैं। वस्तुतः इलियट के लिए परंपरा एक अविच्छिन्न प्रवाह है जो अतीत के सांस्कृतिक साहित्यिक दाय के उत्तमांश से वर्तमान को समृद्ध करता है। यह अतीत की जीवंत शक्ति है जिससे वर्तमान का निर्माण होता है और भविष्य का अंकुर फूटता है। परंपरा के नाम पर अंधविश्वासों और रूढ़ियों का अनुकरण सृजन में वांछित नहीं है। आचार्य देवेन्द्र नाथ शर्मा के मत में "भारत के संदर्भ में व्यास, बाल्मीकि से लेकर आज तक का और केरल से लेकर कश्मीर तक, गुजरात से असम तक का सारा दाय भारतीय परंपरा में वर्तमान है और उसे जिस कवि ने जितना आत्मसात् किया है उसे उतनी ही सिद्धि मिली है और प्रसिद्धि भी। इतिहास–बोध इस परंपरा का अभिन्न अंग है; क्योंकि इतिहास का जब तक सम्यक् अवगम नहीं होता तब तक न तो कोई कालातीत को समझ पायेगा, न कालिक को, न उसक पार्थक्य को और न उसके योग पथ को।"[2]

टी.एस. इलियट रचना में ऐतिहासिक जागरूकता को अपेक्षित मानते हैं; क्योंकि यह मूल्य भावना का आधार है, जिस रचना में ऐतिहासिक जागरूकता का अभाव है, वह मूल्यवान नहीं है। डॉ. वासुदेव नंदन प्रसाद का कहना है "किन्तु ऐतिहासिक जागरूकता केवल सामयिक जीवन का बोध ही नहीं, वह केवल राष्ट्रीय ही नहीं, बल्कि समग्र महादेशीय सांस्कृतिक चेतना का व्यापक बोध है। इसी बोध के सहारे साहित्यकार जीवन–प्रवाह में अपने गुरूत्तर दायित्व को समझता है और युग की आकांक्षाओं को विकसित करता है।"[3]

अतीत और वर्तमान के पारस्परिक संबंधों को ग्रहण कर जीवन को विकसित करने की शक्ति को ही मूल्य–दृष्टि कहा जाता है। जब साहित्यकार में यह मूल्य दृष्टि आ जाती है तो उसकी रचना में अतीत की सांस्कृतिक उपलब्धि और वर्तमान की आकांक्षा दोनों का समन्वय और एकीकरण दिखलाई पड़ने लगता है। तब वर्तमान और अतीत विरोधी नहीं, सजातीय और सह धर्मी बन जाते हैं। महान् रचनाओं की प्रेरणाभूमि व्यापक, संतुलित और गहरी होती है।

वेद, उपनिषद्, पुराण, रामायण के प्रभाव हिन्दी काव्य पर स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। राम काव्य भी इनसे अछूता नहीं हैं। 'रामतापोपनिषद', 'बाल्मीकि रामायण' भवभूतिकृत 'उत्तर रामचिरतम्', कालिदास कृत 'रघुवंशम्' आदि संस्कृत काव्य हिन्दी रामकाव्य के उपजीव्य हैं। गोस्वामी तुलसीदास रामचरितमानस की रचना संस्कृत रामकाव्य–परंपरा के आलोक में करते हैं। तत्कालीन पुराण–श्रवण, कथावाचन, धर्म–प्रवचन आदि द्वारा प्रभावित होकर रामकथा को समस्त कथा सूत्रों तथा धार्मिक आदर्शों के साथ समन्वित कर लोक भाषा में 'रामचरितमानस' की रचना तुलसीदास करते हैं–

"नाना पुराणनिगमागम सम्मतं यद्
रामायणे निगदतम क्वचिदन्यतोऽपि
स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा

भाषा निबंध मतिमञ्जुल मातनोति।"[4]

शैव और वैष्णवों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए शिव–पार्वती संवाद, नारद–मोह, शिव कथा, काक भुसंडी, गरूड़ कथा आदि के साथ उपसंहार, कांलनेमी आदि पात्र की सृष्टि की योजनाएँ मानस में हैं। 'चंपुरामायण' में केवट प्रसंग 'अनर्घराघव' में सीता–स्वयंवर तथा 'हनुमन्न नाटक' में भरत–हनुमान प्रसंग है जिन्हें मानस में ग्रहण किया गया है। नील–नल प्रसंग हनुमन्न नाटक से गृहीत है। रावण–मारीच प्रसंग 'बाल्मीकि रामायण' से स्वीकृत है। अहल्या–प्रसंग चंपुरामायण (भोजराज) से लिया गया है। अयोध्याकांड में दशरथ की वृद्धता का उल्लेख है जिसकी चर्चा कालिदास कृत 'रघुवंशम्' में है।

'प्रसन्नराघव' के प्रसंगों को भी 'रामचरितमानस' में लिया गया है। 'लक्ष्मण–परशुराम संवाद', 'सीता–स्वयंवर' प्रसंग पर 'प्रसन्नराघव' का स्पष्ट प्रभाव है। 'प्रसन्नराघव' में अशोकवाटिका प्रसंग के अंतर्गत रावण–सीता का उल्लेख है। चंद्रहास–लोभ का प्रसंग भी है। 'श्रीमद्भागवत्' का प्रभाव सीता–स्वयंवर पर है। पुष्पवाटिका में राम–सीता प्रसंग है जिसमें चौपाई है–

"लोचन मग रामहिं उर आनी।
दीन्हें पलक कपाट सयानी।"[5]

श्रीमद्भागवत के 'नेत्ररन्ध्रेण हृदिकृत्वा, 'निमील्य च' का स्पष्ट प्रभाव है। 'बाल्मीकि रामायण' के आधार पर ही 'रामचरितमानस' में भी बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड किष्किंधा काण्ड, सुंदरकाण्ड का विभाजन है। 'युद्धकाण्ड' के बदले 'लंककाण्ड' नामकरण है। बाल्मीकि के राम की तरह रामचरितमानस के राम भी धर्मनिष्ठ, मर्यादा पुरूषोंत्तम हैं। 'अध्यात्म' और 'कृतिवासीय' रामायाण भी हिन्दी रामकाव्य के विकास में योग देते हैं।

महाकवि तुलसीदास का युग भिन्न संस्कृतियों, धर्मों और राजनीतिक– सामाजिक सरकारों का युग है। हिन्दू–मूल्यों और मुस्लिम–मूल्यों के सामंजस्य का उपक्रम भी इस युग में होता है किन्तु इस युग में निर्गुण–सगुण काव्य–धाराओं में टकराहट ही नहीं होती, वरन् शैव–शाक्त, शाक्त–वैष्णव में परस्पर द्वन्द्व और संघर्ष भी चरम पर होते हैं। धर्म–दमन की प्रवृत्ति और धर्मांरतरण के धरातल पर 'दीने इलाही' की प्रतिष्ठा भी होती है।

वैभवपूर्ण विलासी प्रवृत्ति के धरातल पर सत्ता में ऐश्वर्य एवं विलासिता का चरमोत्कर्ष होता है इस युग में। इनसे हिन्दी काव्य भी प्रभावित होता है। श्रृंगार काव्य और रसिक भक्तिकाव्य उक्त कथन के प्रमाण हैं।

जब सिद्धों और शैवों, जैनियों एवं वैष्णवों के पारस्परिक धार्मिक स्पर्द्धा का माध्यम काव्य बनता है तब इस्लाम का ऐकेश्वरवाद अपनी अस्मिता स्थापित करता है। उक्त विषम परिवेश और सांस्कृतिक–साम्प्रदायिक द्वन्द्वों के आलोक में गोस्वामी तुलसीदास 'नाना पुराण निगमागम सम्मत' 'रामचरित मानस' की रचना करते हैं जिसमें रहीम का सर्ववाद, जायसी की दोहा–चौपाई शैली, प्रबंधात्मकता, लोक–संस्कृति, आध्यात्मिकता, निर्गुण काव्य का ऐकेश्वरवाद, कला–सौष्ठव, शैली की उदात्तता, भक्ति की मांगलिकता और लोक–कल्याण–वृत्ति का चरमोत्कर्ष होता है।

"संवत् सोरह सौ इकतीसा।
करौ कथा हरिपद धरि सीसा।
नौमी भौमवार मधुमासा।
अवधपुरी यह चरित प्रकासा।।"

तुलसीदास (सं. 1589–1680) के मानस के राम पुरूषोत्तमत्व और ब्रह्मत्व के समन्वित विग्रह हैं–

"एक अनीह अरूप अनामा।
अज सच्चिदानंद पर धामा।।
व्यापक रूप विश्व भगवाना।
तेहि धरि देह चरित कृत नाना।।"
"सो केवल भक्तन हित लागी।
परम कृपालु प्रणल अनुरागी।।"

वह ब्रह्मस्वरूप राम का अस्तित्व सगुण साकार घोषित करते हैं और भक्ति दास्यपरक करते हैं–

"सेवक सेव्य भाव बिनु
भव न तरिए उरगारि।"[6]

राम परम सत्ता है; किन्तु उदार और करूणा–सिंधु हैं। गोस्वामी जी अद्वैतवाद की अपेक्षा विशिष्टाद्वैतवाद की प्रतिष्ठा करते हैं और राम की सृष्टिव्यापी सत्ता को स्वीाकर करते हैं–

"सीयाराम मय सब जग जानी।
करौं प्रणाम जोरि जुग पानी।।"[7]

'रामचरित मानस' के राम सौंदर्य के आगार, शील की प्रतिमा और शक्ति के प्रतीक हैं–

"कोटिक मनोज लजावन हारे।"[8]

'पुष्पवाटिका–प्रसंग' में राम का चरित्र प्रेम को पराकाष्ठा प्रदान करता है, मर्यादा एवं उदात्तता

एक साथ प्रदान करता है–

"परनारी सपनेहुँ न हेरी।"[9]

'मानस में तुलसी का प्रेम एवं सौंदर्य मूल्यपरक है, अनुपम एवं माधुर्यपूर्ण है–

"स्याम गौर किमी कहौं बखानी।
गिरा अनयन नयन बिनु बानी।।"[10]

"सुन्दरता कहँ सुन्दर करई।
छवि गृह दीप शिखा जनु बरई।।"[11]

"थके नयन रघुपति छवि देखे।"[12]

'मानस' के प्रेम–सौंदर्य में उन्माद नहीं; उछाह है, काम नहीं, माधुर्य हैं 'पंचवटी' की शूर्पनखा के मादक, कामुक और उच्छृंखल सौंदर्य का परिहार करते हैं 'मानस' में तुलसी।

'मानस' के रामशक्ति के प्रतीक भी हैं–

"विधि हर संभू नचावन हारे।"[13]

राम की शक्ति विध्वंशकारी नहीं, कल्याणकारी है।

रामचरितमानस के राम लोकरंजक से अधिक लोकरक्षक हैं और उनका अभिप्रेत मूल्य एवं मानव–धर्म की स्थापना है। 'मानस' में पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों को नया आयाम प्राप्त है। राम के व्यक्तित्व में समन्वय एवं समरसता विद्यमान हैं।

'रामचरितमानस' सहअस्तित्व, साहचर्य और सहकर्म का महाकाव्य है। संयुक्त परिवार के मूल्यों की रक्षा की प्रतिबद्धता है राम में। राम समर्पण एवं सेवा के साथ त्याग द्वारा उक्त मूल्यों की प्रतिष्ठा करते हैं। 'वनगमन' उसी का प्रमाण है।

'रामचरितमानस' भ्रातृत्व, मित्रता, गार्हस्थ्य मूल्य और मानवीय सरोकारों का काव्य है। जाति–संप्रदाय एवं क्षेत्र से परे निषाद, सुग्रीव, विभीषण के साथ राम संबंध स्थापित करते हैं, अहल्या का उद्धार करते हैं, शबरी को स्वीकार करते हैं।

'रामचरितमानस' में समन्वय की विराट चेष्ठा है। शैव–वैष्णव, निर्गुण–सगुण, शैव–शाक्त, राजा–प्रजा, शासक–शासित के समन्वय से धार्मिक एवं साम्प्रदायिक सद्भाव की स्थापना का उपक्रम हैं 'मानस' में–

"जो गुन रहित सगुन सो कैसे।
जनु जल उपल विलग नहिं जैसे।।"
"शिवद्रोही मम दास कहावा।
सो नर मोहि सपनेहुँ न भावा।।"[14]
"सोइ मम ईष्ट देव रघुवीरा।"[15]
"जगत् जननी जग–छवि निधि मूला।
वाम अंग सोभित अनुकूला।।"[16]

तुलसी 'मानस' में राम को निरंतर द्वन्द्व एवं संघर्षरत दिखाते हैं। वह आत्मपीड़ा से युक्त होकर भी जन–मुक्ति के लिए राक्षसत्व से लड़ते है; विजय प्राप्त करते हैं और धर्म एवं मूल्यों की रक्षा करते हैं।

राम का संघर्ष सत्ता का संघर्ष नहीं है, राष्ट्रीय अस्मिता एवं स्वतंत्रता, मानव धर्म एवं मूल्यों के लिए संघर्ष है। इसलिए वह लंका–विजय के बाद लंका की सत्ता का भोग नहीं, त्याग कर देते हैं। वह उसे विभीषण को अर्पित कर देते हैं। राम की मातृभूमि के प्रेम और समर्पण का भाव भी प्रेरक एवं अनुकरणीय है। उनके लिए जन–प्रिय हैं और वह जन के प्रिय हैं–

"अवधपुरी मम अति सुहावनी।"[17]
"अति मम प्रिय इहाँ के बासी ।"[18]

राम आत्मशक्ति के साथ जन–शक्ति के प्रतिनिधि हैं। 'मानस' में रावणत्व के विरूद्ध रामत्व की लड़ाई में जनशक्ति की अपूर्व एवं अनुपम सहभागिता है। रावण रथी है, राम विरथी हैं–

"रावण रथी विरथी रघुवीरा।"[19]

लेकिन उनका संघर्ष आत्मसंघर्ष के साथ जन–संघर्ष है। उनका विजय–अभियान जन–शक्ति का विजय–अभियान है।

'मानस' में जीवन के राग–विराग, सुख–दुःख, आमर्ष–विमर्श, नीति–कुनीति, संयोग–वियोग, जय–पराजय, उत्थान–पतन, भुक्ति–मुक्ति का विमर्श भी है।

गोस्वामी तुलसीदास का युग धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक अवमूल्यन का युग होता है। जिसमें मानवीय आचरण की भ्रष्टता, भोगवादिता, धर्माडंबर की विद्रूपता, अनैतिकता आदि चरम पर होती है। वह युग सत्य का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हैं–

"पंडित सोइ जो गाल बजावा।"[20]
"गुरू वही जो शिष्य धन हरई।"[21]
"नारी मुई घर संपत्ति नासी।
मुड़ मुड़ाइ भए सन्यासी।।"[22]
"कलिकाल बेहाल किए मनुजा।
कोई मानत नहिं अनुजा तनुजा।।"[23]
"जो कह झूठ मसखरी जाना।
कलिजुग सोइ गुनवंत बखाना।।"[24]

उक्त विद्रूपताओं से मुक्ति के लिए तुलसी

मानस के राम के साथ सीता, लक्ष्मण, भरत, उर्मिला, विभीषण, सुग्रीव, जामवंत, निषाद, शबरी, कोल्ह–भील के चरित्रों के माध्यम से मूल्य एवं नैतिकता की पुनर्प्रतिष्ठा करते हैं। वह मनुष्य एवं पशु के अंतर का निर्धारण कर मानव को रावण नही; राम बनने की प्रेरणा देते हैं–

"परद्रोही परदार रत पर धन पर अपवाद।
ते नर पाँमर पापमय देह घरे मनुजाद।।"[25]

'मानस' में तुलसी ज्ञान, कर्म और भक्ति की त्रिवेणी प्रवाहित करते हैं–

"राम भगति जहँ सुरसरि धारा।
सरसई ब्रअ विचार प्रचारा।।
विधि निषेधमय कलिमल हरनी।
कर्म कथा रविनंदिनी बरनी।।"
राम भगति जहँ मुकुति गोसाई।[26]

भक्ति निरूपण

वह उस सहज भक्ति का प्रतिपादन करते हैं जो धर्माडंबर, धर्मान्धता और साम्प्रदायिकता से मुक्त है जिसमें सहजता एवं निष्ठा है–

"नहिं कलिकर्म न भगति विवेकू।
रामनाम अवलंबन एकू।।"[27]

तुलसी 'मानस' में एक ऐसे 'रामराज्य' की परिकल्पना करते हैं जहाँ मानव–धर्म एवं मूल्य सर्वोपरि होते हैं। सभी विवेकी, शीलवान, सम्पन्न और परस्पर प्रेमी होने के साथ 'स्बधर्म' में निरत होते हैं–

"नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना।
नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना।।"[28]
"सब नर करई परस्पर प्रीती।
चलत स्वधर्म निरत श्रुति नीति।।"[29]

'मानस' का 'रामराज्य' आधुनिक लोकतांत्रिक मूल्यों का प्राणतत्त्व है। समता, न्याय और बन्धुत्व के साथ सहअस्तित्व, सहकर्म, सहभोग–भाव की प्रतिस्थापना है 'मानस' में। यहाँ राजतंत्र में जनतंत्र साकार है–

"तुम मम प्रिय भरत सम भ्राता।
सदा सहहु पुर आवत जाता।।"[30]
"जो पाँचउ जन लागै नीका।
करहूँ हरसि हिय रामहिं टोका।।"
"जो अनीति कछु भाखडँ भाई।
तौ मोहिं बरजौ भय द्विसराई।।"[31]

'मानस' में दलित–विमर्श और नारी–विमर्श का द्वार भी खुलता प्रतीत होता है–

"हरिजन जानि प्रीति अति बाढ़ी।"[32]
"ताहि देइ गति राम उदारा।
सबरी के आश्रम पगु धारा।।"[33]
"कत विधि सृजि नारी जग माही।
पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।।"[34]

'मानस' मनुष्य की स्वाधीनता, स्वावलंबन, जिजीविषा, संघर्षशीलता, विजय और स्वराज्य के साथ 'सुराज' का महाकाव्य है जिसमें प्राणतत्त्व मूल्य एवं मानवता हैं। परिजन, पुरजन, गिरिजन, वनवासी सभी शोषण, दमन, अनय और अत्याचार के विरूद्ध एक साथ लड़ते हैं, विजय प्राप्त करते हैं। सबकी अपनी अस्मिता और निजी पहचान है।

'रामचरित मानस' के रामराज्य को कुछ मार्क्सवादी चिंतक ब्राह्मणवादी, वर्णवादी जनविरोधी व्यवस्था का प्रतिरूप मानते हैं। डॉ. रमेश कुंतल मेघ इसे यूटोपिया मानते है; किन्तु महात्मा गाँधी के 'स्वराज' एवं 'सुराज' का मानदण्ड रामराज्य ही होता है; क्योंकि इसके प्रतिष्ठापक राम सत्तावादी नहीं, लोकवादी और मानववादी हैं–

"सब मम प्रिय सब मम उपजाए।
सबते अधिक मनुज मोहि भाए।।"[35]

डॉ. फादर कामिल बुल्के राम को जनक्रांति के अग्रदूत, डॉ. बारान्निकोव मानवता के अग्रदूत और डॉ. राममनोहर लोहिया सांस्कृतिक पुरूष मानते हैं। वह उन्हें राष्ट्रीय एकता एवं समरसता के प्रतिष्ठापक मानते हैं।

मानस का रामराज्य उच्चतम सामाजिक व्यवस्था का घनीभूत रूप है। इसमें एक ऐसे मनोराज्य की परिकल्पना है जो श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों का पोषक है। इसमें राम भारतीय संस्कृति की गरिमा एवं आदर्श के प्रतिरूप हैं। इसकी साहित्यिकता मूल रूप से भावात्मक है, सौदर्य एवं माधुर्य मंडित है।

रामकाव्य में 'मानस' अपभ्रंश के चरित एवं कथाकाव्यों की प्रबधात्मकता की चरम परिणति है और अवधी सौंदयोत्कर्ष की प्रतिमान है।

'रामचरित मानस' में संपूर्ण भारतीय संस्कृति जन साधारण की वस्तु है। भारतीय अद्वैतवाद एवं सर्ववाद, मानववाद एवं मंगलवाद के धरातल पर 'मानस' में मानववाद की घोषणा आज के वैज्ञानिक युग में भी सार्थक प्रतीत होती है; इसलिए डॉ. रामविलास शर्मा 'मानस' को मानवता, लोक–जागरण और लोक–क्रांति का महाकाव्य घोषित करते हैं।

तुलसीदास मानवीय अस्मिता एवं मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए निरंतर संघर्ष करने वाले महाकवि है; इसलिए मुहम्मद इकबाल को भी उनपर नाज है–

"राम के वजूद पर है हिन्दोस्तां को नाज।
हम तो उन्हें समझते हैं अहले इमामे हिन्द।।"

हिन्दी कृष्णकाव्य के प्रवर्त्तक कवि–सूरदास जी रामकाव्य की परंपरा में राम के चरित्र को स्वर देकर 'सूरसागर' में योग देते हैं। अन्य रामकाव्य भक्तिकाल में रचे जाते हैं जिनमें प्रमुख हैं–रामायण कथा (विष्णुदास), रामजन्म, भरत–विलाप (ईश्वरदास) रामध्यान मंजरी (अग्रदास), रामचंद्रिका (केशव दास) आदि। आधुनिक युग में रामायण को गति देने वाले रामकाव्य हैं–'साकेत' (मैथिलीशरण गुप्त), 'पंचवटी' (गुप्त), 'वैदेही वनवास' (अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिओध), 'उर्मिला' (बालकृष्ण शर्मा नवीन), 'राम की शक्तिपूजा' (पं. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला), 'साकेत संत' (बलदेव प्रसाद मिश्र), 'पुरूषोत्तम राम' (पं. सुमित्रानंदन पंत), 'संशय की एक रात' (नरेश मेहता), 'विदेह' (रामावतार अरूण), 'हनुमन्न चरित' (रणवीर सिंह), 'रामकथा कल्पलता' (नित्यानंद शास्त्री), 'रामराज्य' (हरिशंकर शर्मा, बलदेव प्रसाद मिश्र), 'अरूण रामायण' (रामावतार अरूण), 'भूमिजा' (रघुवीर शरण मिश्र), 'जानकी जीवन' (राजाराम शुक्ल), 'अग्निपरीक्षा' (आ. श्री तुलसी), 'कैकेई' (केदारनाथ मिश्र प्रभात), 'पवन तनय' (राजेन्द्र शर्मा), 'आन्जनेय' (दयाशंकर विजय), 'दशासन', 'अग्निपथ' (कैलाश विद्रोही), 'निष्कासिता' (परमानंद 1971), 'उत्तरायण' (डॉ. राम कुमार, 1972), 'भरत' (बाल्मीकि विकट 1973), 'प्रवाद पर्व' (नरेश मेहता 1977), 'सीता–समाधि' (राजेश्वरी अग्रवाल, 1978), 'वनवासिनी सीता' (ज्ञानवती सक्सेना, 1979), 'स्वर पाषाण शिला के' (रमेश चन्द्र, 1981) आदि।

द्विवेदी युग के प्रवर्तक कवि मैथिलीशरण गुप्त 'साकेत' (1931) में भारतीयता, राष्ट्रीयता, गाँधीवाद और मानवता की समन्वित अभिव्यक्ति करते हैं। 'साकेत' के राम आर्य–संस्कृति के महान प्रतिष्ठापक हैं। वह आर्य–संस्कृतिक को नया आयाम प्रदान करते हैं–

"मैं आर्यों का आदर्श बताने आया,
जन–सम्मुख धन को तुछ जताने आया।
सुख–शांति हेतु मैं क्रांति मचाने आया।
विश्वासी का विश्वास बचाने आया।
संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया
इस धरती को ही स्वर्ग बनाने आया।।"[36]

'साकेत' के राम, लक्ष्मण, भरत, उर्मिला आदि त्याग के प्रतिमान हैं–

"त्याग मात्र इसका धन है।
त्याग और अनुराग चाहिए बस यही।"[37]

'साकेत' में कर्मवाद की प्रतिष्ठा है–

"करके अपना कर्त्तव्य रहो संतोषी।"[38]

धर्म, समाज और राजनीति के आदर्श 'साकेत' में अंकित हैं। राम के विश्वव्यापी अस्तित्व की प्रतिष्ठा हैं–

"हम को ही लेकर अखिल विश्व की क्रीड़ा,
आनंदमयी नित नई प्रसव की पीड़ा।"[39]
"केवल उन के ही लिए नहीं यह धरणी,
है औरों की भी भार धारिणी–भरणी।
जनपद के बंधन मुक्ति
हेतु हैं सबके।
यदि नियम न हो उच्छिन्न
सभी हो कबके।"[40]
"मातृसिद्धि, पितृ–सत्य सभी
मुझ अद्धांग बिना सभी
हैं अर्द्धाङ्ग अधूरे ही,
सिद्ध करो तो पूरे ही।।"[41]

'साकेत' में परिवारिक मूल्यों की प्रतिष्ठा का उपक्रम है। "साकेत के गार्हस्थ्य चित्रों में भारतीय संस्कृति का परमोज्ज्वल स्वरूप मिलता है।"[42]

राष्ट्रीयता और राष्ट्र की एकता–अखंडता, अस्मिता एवं स्वतंत्रता के प्रति निष्ठा व्यक्त है, 'साकेत' में–

"नियत शासक लोक सेवक मात्र।"[43]
"प्रजा का अर्थ है साम्राज्य सारा।"[44]

प्रजातंत्र में प्रजा का मत सर्वोपरि है। राजा निरंकुश होकर कार्य नहीं कर सकता–

"वही हो जो कि समुचित हो सभा में।"[45]

राज्य की एकता–अखंडता सर्वोपरि है–

"एक राज्य न हो बहुत से हो जहाँ
राष्ट्र का बल बिखर जाता है वहाँ।"[46]

प्रजातंत्र में प्रजा की सुख–समृद्धि के लिए औद्योगिक–आर्थिक और वैज्ञानिक विकास का समर्थन है 'साकेत' में–

"करते ज्ञानी–विज्ञानी
नित नये सत्यों की खोज
वसुधा विज्ञों ने कितनी ही
खोजी नई नई खानें।"[47]

गाँधीवादी दर्शन के धरातल पर 'सर्वोदय', 'सुराज' और 'स्वराज' की परिकल्पना है 'साकेत' में–

"मैं आया उनके लिए कि जो तापित हैं,
जो विवश, विकल, बलहीन, दीन शापित हैं।"[48]

'साकेत' में भौतिक मूल्यों की अपेक्षा मानवीय मूल्यों को प्रमुखता प्राप्त है–

"नहीं नहीं पापी का सोना,
यहाँ न लाना भले सिंधु में कहीं डुबोना।"[49]

'साकेत' में वैश्विक अस्मिता और वैश्विक संस्कृति की प्रतिष्ठा का उपक्रम है–

"तात देश की रक्षा का ही
कहता हूँ मैं उचित उपाय।
पर वह मेरा देश नहीं,
जो करे दूसरों पर अन्याय।
एक देश का अखिल विश्व का
तात चाहता हूँ मैं त्राण।"[50]

केदारनाथ मिश्र प्रभात 'कैकेई' में कैकेई को राष्ट्र के लिए सर्वस्व उत्सर्ग करने वाली नायिका के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं–

"वैधव्य मुझे स्वीकार राष्ट्र की जय हो,
दासत्व न अंगीकार राष्ट्र की जय हो।
वन की ओर राम का जाना,
मानवता की जय हैं,
आर्य–सभ्यता की चिर मानव
स्वतंत्रता की जय है।"51

पं. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला 'तुलसीदास' और 'राम की शक्तिपूजा' में भारतीय संस्कृति, मनुष्यता और मनुष्य की आत्मशक्ति की प्रतिष्ठा करते है। 'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति पूजा' में मनुष्य की विजय की प्रतिनिष्ठा है–

"भारती इधर मैं उधर सकल
जड़ जीवन के संचित कौशल
जय इधर ईश हैं उधर मायाकर।"
–तुलसीदास

होगी जय होगी जय हे पुरूषोत्तम नवीन' 'राम की शक्ति पूजा' में शक्ति–संचय है। इसके आधार पर तुलसीदास में वह सांस्कृतिक पुनर्निमाण से गहरे अर्थ में संपृक्त हो उठता है।"[52]

'रामकथा कल्पलता' के रचयिता नित्यानंद शास्त्री रामायण के विभिन्न पात्रों का चित्रण करते हुए आधुनिक दृष्टि से नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा का उपक्रम करते हैं। इस काव्य के माध्यम से न केवल भारतीय संस्कृति के पारंपरिक मूल्यों की व्यख्या करते हैं, अपितु आधुनिक युग की दृष्टि से भी मानव–संस्कृति के शाश्वत मूल्यों की स्थापना का प्रयास वह करते हैं। बलदेव प्रसाद मिश्र 'रामराज्य' में रामराज्य के आदर्शों की स्थापना करते हैं। इसमें गाँधी जी के रामराज्य के सपने को साकार करने की प्रेरणा है।

'भगवान राम' में मनबोध लाल आध्यात्मिक तत्वों, नैतिक आदर्शों एवं मानवमूल्यों की पुनर्व्याख्या करते हैं।

"वह अद्वैत ज्ञान और कर्म–योग पर बल देते हैं।"[53]

रामावतार अरूण पोद्दार 'अरूण रामायण' में रावणत्व पर रामत्व की विजय, असत्य पर सत्य की विजय के साथ नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करते हैं। राजाराम शुक्ल 'जानकी जीवन' में 'बाल्मीकि रामायण' के आधार पर सीता के निर्वासन के साथ मानव–मूल्यों का उद्घाटन करते हैं। आचार्य तुलसी 'अग्निपरीक्षा' में जैन पुराण के आधार पर सीता के तेजस्वी व्यक्तित्व को स्वर देते हैं। रघुवीरशरण मित्र 'भूमिजा' में निर्वासनजन्य परिताप की अभिव्यक्ति करते हैं। इसमें मानसिक द्वन्द्व को भी स्वर प्राप्त है। 'हनुमन्न चरित' (रणवीर सिंह), 'पवन तनय' (राजेन्द्र शर्मा), 'आंजनेय' (दयाशंकर विजय) में राम–भक्ति के साथ हनुमान के शौर्य, पराक्रम, आत्मत्याग, सत्यनिष्ठा की अभिव्यक्ति है। "वस्तुतः हनुमान का दिव्य व्यक्तित्व; चरित एवं सेवा–भाव का आदर्श आज के युग के लिए भी प्रेरणादायक है।"[54]

रामावतार अरूण पोद्दार 'विद्रोह' में उपनिषदों के अध्यात्मवाद, गीता के कर्मयोग और आधुनिक युग के लोकहितवाद की समन्वित अभिव्यंजना करते हैं। अनूप शर्मा 'अग्निपथ', कैलाश तिवारी 'दशानन' में रावण के पराक्रम और संघर्ष–शक्ति को नया आयाम प्रदान करते हैं। उदय शंकर भट्ट 'अंतर्मंथन', रामानंद शास्त्री 'चित्रकूट', रामेश्वर दयाल दूबे 'सौमित्र' में रामायण के पात्रों का रेखांकन आधुनिक संदर्भों में करते हैं। डॉ. रमेशचन्द्र शर्मा 'शबरी' (1966), 'निषाद राज' (1976), 'अग्निपरीक्षा' (1984) में परपंरागत वर्ण–व्यवस्था से परे मानवीय अस्मिता को प्रमुखता देते हैं। पंडित सुमित्रानंदन पंत 'पुरूषोत्तम राम' में राजनीति, शिक्षा–कला, साहित्य की आधुनिक परिप्रेक्ष्य में विवेचना करते हैं। 'संशय की एक रात' में राम के माध्यम से नरेश मेहता आधुनिक मानव की द्वन्द्वग्रस्तता और आधुनिक जीवन–बोध पर

प्रकाश डालते हैं। सामाजिक कल्याण के लिए व्यक्ति–अस्मिता के परे आस्थामूलक राम बनने की प्रेरणा है।

इस प्रकार हिन्दी रामकाव्य में 'रामायण' की अभिव्यक्ति युग–सापेक्ष होती है और राम के व्यक्तित्व में आधुनिक मनुष्य की अस्मिता, द्वन्द्वग्रस्तता, जिजीविषा और अपराजेय संघर्ष–शक्ति का आधान है। भारतीय और भारतीय संस्कृति की वैश्विक अस्मिता की अधिष्ठापना का उपक्रम है हिन्दी रामकाव्य में।

संदर्भ सूची :

1. After Strange Gods, P. 18
2. पाश्चात्य काव्यशास्त्र, आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा, अनुपम प्रकाशन, पटना, 2010, पृष्ठ–191
3. साहित्य का विश्लेषण, वासुदेव नंदन प्रसाद, भारती भवन, पटना, 1975, पृष्ठ–411
4. रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, गीताप्रेस गोरखपुर, सं. 2050, पृष्ठ–18
5. रामचरितमानस बालकांड, पृष्ठ–536
6. रामचरित मानस, पृष्ठ–536
7. वही पृष्ठ–22
8. वही पृष्ठ–229
9. वही पृष्ठ–127
10. वही पृष्ठ–120
11. वही पृष्ठ–121
12. वही पृष्ठ–122
13. वही पृष्ठ–338
14. वही पृष्ठ–72
15. वही पृष्ठ–400
16. वही पृष्ठ–427
17. वही पृष्ठ–474
18. वही पृष्ठ–474
19. वही पृष्ठ–440
20. वही पृष्ठ–520
21. वही पृष्ठ–520
22. वही पृष्ठ–522
23. वही पृष्ठ–523
24. वही पृष्ठ–521
25. वही पृष्ठ–493
26. वही पृष्ठ–532
27. वही पृष्ठ–32
28. वही पृष्ठ–485
29. वही पृष्ठ–485
30. वही पृष्ठ–484
31. वही पृष्ठ–494
32. वही पृष्ठ–376
33. वही पृष्ठ–343
34. वही पृष्ठ–344
35. वही पृष्ठ–544
36. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, संपा0 उषा यादव, प्रकाशन केंद्र, लखनऊ, पृष्ठ–147
37. वही पृष्ठ–147
38. वही पृष्ठ–147
39. वही पृष्ठ–148
40. वही पृष्ठ–150
41. वही पृष्ठ–151
42. साकेत : एक अध्ययन, डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ–76
43. साकेत, पृष्ठ–155
44. वही पृष्ठ–155
45. वही पृष्ठ–156
46. वही पृष्ठ–156
47. वही पृष्ठ–156
48. वही पृष्ठ–158
49. वही पृष्ठ–48
50. वही पृष्ठ–160
51. कांदबनी सं.– आनंद नारयण शर्मा, भारती भवन, पटना, 1966, पृष्ठ–88
52. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, बच्चन सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2011, पृष्ठ–162
53. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, गणपति चन्द्रगुप्त, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ–196
54. वही पृष्ठ–197

हिंदी विभाग,
भूपेन्द्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा

9

विदेशों में रामायण की रामकथा

डॉ. नलिनी श्रीवास्तव

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले ।
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति ।[1]

रामायण 1/2/37

जब तक धरती पर नदियाँ और पहाड़ रहेंगे तब तक इस धरती पर रामकथा का प्रचार होता रहेगा। रामायण–कथा की अमरता के विषय में प्रस्तुत श्लोक के द्वारा बाल्मीकि ने रामायण में ही कहा है । महर्षि बाल्मीकि का यह कथन समय के साथ अक्षरसः सत्य हुआ है और भविष्य में भी इसकी मर्यादा अक्षुण्ण रहेगी। भारत तो श्रीराम की अवतार भूमि है ही परन्तु भारत के भी अनेक देशों में लोग भारतीय जन–जीवन और संस्कृति से प्रभावित है।

श्री राम कथा मूलरूप में भारतीय है यह कथा लोकमंगलकारी सुविशाल, व्यापक एवं अतिसारगर्भित है। श्री राम के जीवन–लीला से सम्बन्धित यह कथा उत्तर एवं दक्षिण भारत की संस्कृतियों को जोड़नेवाली एक महत्त्वपूर्ण–श्रृंखला है। भारत के हर धर्म, सम्प्रदाय एवं सभी वर्ग के अनुयायियों में यह किसी न किसी रूप में अवश्य व्याप्त है। बाल्मीकि रामायण रूपी सागर की यह धारा अति प्राचीनकाल से ही भारत के चारों दिशाओं में गुंजने लगी थी बाद में इस कथा में अलग–अलग देशों के निवासियों ने इस कथा में पर्याप्त परिवर्तन भी कर लिए जिससे यह उनके समाज एवं परिस्थिति के सानुरूप हो गयी। आज भी जिनदेशों में भारतीय है अथवा जिस देशों के लोग भारत में हैं वहाँ कम या अधिक रूप में रामकथा की परिचर्चा अवश्य देखने सुनने को मिलती है।

यह कथा विश्व के हर प्रमुख भाषाओं में लिखी गई है। श्री राम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में, आदर्श मानव के रूप में रामायण में प्रस्तुत किया गया है। जो विपरीत एवं असंभव परिस्थिति में भी मानव जीवन को उच्च शिखर पर पहुँचानें में सक्षम प्रमाणित हुआ है। राम एक आदर्श, पुत्र, शिष्य, पति, नेता, राजा, राजनयिक, योद्धा के रूप में स्वयं को सिद्ध करके दिखाये है। एक शत्रु के रूप में भी उनके अन्दर करूणा एवं दयालुता का भाव ही दिखाई देता है । लंका जैसे राज्य पर विजय पाकर भी वह स्वयं को श्रेय नहीं देते अपनी सेना को जीत का श्रेय देते हैं और मातृभूमि प्रेम का सन्देश भी देते है –

''जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपिगरीयसी''[2]

दक्षिणी–पूर्वी एशिया के देशों से भारत का सांस्कृतिक सम्बन्ध प्राचीन काल से ही रहा है। आज भारत में कई संस्कृतियों का संगम दिखायी पड़ता है और यहाँ के निवासी अलग–अलग धर्मों को मानने वाले हैं फिर भी इनपर भारतीय संस्कृति का गहरा प्रभाव पड़ा है जिसके कारण यहाँ की संस्कृति और साहित्य में राम की कथा घुल मिल गयी है। सम्भवतः इन देशों में रामकथा अशोक एवं समुद्रगुप्त जैसे प्रभावशाली भारतीय राजाओं द्वारा चलाये गये विदेशों में धर्म–विजय अभियान से बहुत पूर्व ही अपना स्थायी स्वरूप प्राप्त कर चुकी थी।

रामकथा कथा मारीशस और दक्षिण अफ्रीकी देशों में गन्ने की खेती के लिए भारत से लाये गये गिरमिटिया किसानों व मजदूरों के साथ आया। रामकथा एक सौ पचास सालों से दक्षिण अमेरिकी देशो, सुरीनाम, गुयाना व त्रिनिदाद आदि देशों में आया। गोस्वामी तुलसीदासकृत रामचरितमानस की चौपाईयों का भजन कीर्त्तन थके हारे श्रमिकों के द्वारा रात में किया जाता था इन श्रमिकों की श्रीराम में आस्था एवं श्रद्धा थी कि प्रभु राम उन्हें समृद्धि मुक्ति तथा मोक्ष का लाभ इन विषम परिस्थितियों में देंगे। उत्तर एवं मध्य अमेरिका में रामकथा बाद में आया। कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, मैक्सिको और मध्य अमेरिका में रामकथा को वृद्ध एवं युवा बहुत पसंद करते हैं।[3]

विदेशों में तिब्बती रामायण, पूर्वी तुर्किस्तान की खोतानी रामायण, जावा का सेरतराम, सैरीराम, रामकेलिंग, पातानीरामकथा, इण्डोचायना की

रामकेर्ति, खमैररामायण, वर्मा (म्यांम्मार) की यूतोकी रामयागन, थाईलैंड की रामकियेन राम के चरित्र का वर्णन करती है।[4]

ग्रीस के कवि होमर का प्राचीन काव्य इलियड, रोम के कवि नोनस की कृति डायोनीशिया एवं रामायण की कथा में अदभुत समानता है।

विश्व के लोग रामकथा को जितना मान एवं सम्मान देते हैं हमारे भारत में वामपंथी विचारक राम का विरोध एवं उनके महत्व को नजर अंदाज कर देते हैं वहीं विदेशों में रामकथा के अध्यात्मिक तथा साहित्यक मूल्यों की पुर्नस्थापना के लिए अमेरिका के अनेक विश्वविद्यालयों में रामायण को पाठ्यक्रम में स्थान दिया गया है। इन देशों के विद्वान भारत के न होते हुए भी रामकथा के आदर्श की शिक्षाएँ अपने शिष्यों को दे रहे हैं।[5]

आज दक्षिणी–पूर्वी एशिया के अधिकतर देश बौद्ध और मुस्लिम धर्म के अनुयायी हैं लेकिन फिर भी इन देशों में रामकथा पूरी तरह से अपना अस्तित्व बनाये हुए है। थाइलैंड (सियाम या स्याम) दक्षिण–पूर्वी एशिया का एक प्रमुख देश है, जो बर्मा के पूर्व में स्थित है। यहाँ के अधिकांश निवासी बौद्धधर्म के अनुयायी हैं, फिर भी यहाँ रामकथा को अत्यन्त लोकप्रियता प्राप्त है। पन्द्रहवीं सदी में थाईलैंड की राजधानी जिस शहर में हुआ करती थी उसका नाम 'अयुत्थाया' था जो वहाँ की स्थानीय भाषा में अयोध्या का ही रूपांतरण था। 18वीं सदी में बर्मा के सैनिकों का इस शहर पर कब्जा हुआ तो वहाँ के नये राजा राजगद्दी पे आसीन हुए और 'रामाधिपति' कहलाते थे। यहाँ लवपुरी (लोपभुरी) नाम से प्रसिद्ध एक अन्य नगर भी है, जो पहले द्वारवती राज्य की राजधानी थी। थाइलैंड के कई शासक अपने नाम के साथ 'राम' लगाया करते थे। तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के नरेश खुन–राम सम्हेङ् तो राम के नाम से ही प्रतिष्ठित थे। राजा भूमिबल–अतुलंतेज भी अपने नाम के साथ 'राम' लगाते थे।

थाइलैंड में समय–समय पर कई रामायणों का प्रणयण हुआ है, परन्तु सन् 1807 में नरेश राम प्रथम द्वारा जिन्होंने बैंकाक की स्थापना की 'रामकियेन' की रचना की। रामकियेन का तात्पर्य 'रामकीर्ति' से है। 'रामकियेन' को नरेश राम ने राष्ट्रीय महाकाव्य का दर्जा दिया। इस रामायण की कथा को मूलरूप से बाल्मीकि रामायण से लिया गया है, परन्तु इसमें काफी परिवर्तन एवं कुछ कल्पनाओं का आश्रय लेकर इसे अपने देश एवं परिस्थिति के अनुरूप ढाल दिया गया है जिसके परिणामस्वरूप यहाँ के निवासियों में यह धारणा बन गयी है कि राम का जन्म उन्हीं के देश में हुआ था और राम कथा उन्हीं के देश से संबंधित घटता है। 'रामकियेन' रामायण में हनुमान एवं सूर्यदेव सीता वनवास आदि प्रसंग अत्यन्त रोचक ढंग से प्रस्तुत किये गये हैं। नरेश राम प्रथम ने थाईलैंड के '(एमराल्ड) पन्नाबुद्ध' नायक मंदिर की दीवारों पर 'रामकियेन' के कुछ प्रसंग को चित्रित करा दिया जिसे राज–परिवार का संरक्षण प्राप्त था। तात्पर्य यह है कि स्वयं एक बौद्ध धर्म को मानने वाले राजा ने राम के साथ स्वयं की पहचान स्थापित कर अपनी राजकीय विश्वसनीयता स्थापित की।[6]

थाईलैंड के निकटवर्त्ती देश कम्बोडिया (कम्बुज या कम्प्यूचिया) में रामकथा का पर्याप्त महत्व है। यहाँ की रामायण 'रामकेर' के नाम से प्रसिद्ध है यह थाईलैंड के रामायण से विशेष प्रभावित है। यहाँ सूर्यवर्मन द्वारा 12वीं सदी के बनवायें गये मंदिर की दीवार में जो पत्थर लगे हुए है उनपर राम से सम्बन्धित घटनाएं अंकित हैं।[7]

कंम्बोडिया की राजधानी फ्नोम–पेन्ह (Phnon-penb) में एक बौद्ध संस्थान है जहाँ ख्मेर लिपि में दो हजार ताल पत्रो पर लिपिबद्ध पांडुलिपियाँ संकलित हैं जिसमें 'रामकेर' की भी प्रति संकलित है 'ख्मेर' कम्बोडिया की भाषा का नाम है । 'रामकेर' या रामकेर्ति ख्मेर साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कृति मानी जाती है। यह दो खंडों में है प्रथम खंड के विश्वामित्र यज्ञ एवं दूसरे खंड में सीता के पृथ्वी प्रवेश तक की कथा है।

इंडोनेशिया दक्षिण–पूर्व एशिया और औशिनिया में स्थित एक विशाल देश है यह दुनिया का चौथा सबसे अधिक बड़ी मुस्लिम आबादी वाला देश है। इस देश की राजधानी जकार्ता है। यहाँ की रामकथा 'काकाबीन रामायण' तथा इसके रचयिता योगेश्वर को माना जाता है। 90% आबादी वाला इंडोनेशिया राम का भक्त है और रामायण यहाँ का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है यहाँ के लोग भगवान राम को अपना नायक मानते हैं इतिहासकारों के अनुसार रामायण का इंडोनेशियाई संस्करण 7वीं सदी के दौरान जावा में

लिखा गया था तब वहाँ मेदांग राजवंश का शासन था। ईसा से कई सदी पहले लिखी गयी बाल्मीकि रामायण के किष्किंघा कांड में वर्णन है कि कपिराज सुग्रीव ने सीता की खोज में पूर्व की तरफ रवाना हुए दूतों को 'यवद्वीप' और 'सुवर्ण द्वीप' जाने का भी आदेश दिया था कई इतिहासकारों के मुताबिक यही आज के जावा और सुमात्रा है। इंडोनेशिया में रामकथा बाली एवं जावा द्वीपों में विशेष रूप से प्रचलित है। बाली एक हिन्दू द्वीप है। यहाँ भारतीय देवी–देवताओं की पूजा अर्चना परम्परागत रूप में होती है। जकार्ता में रामकथा पर आधारित नृत्य–नाटक विश्व प्रसिद्ध है। इस नगर के समीप 'परम नवम्' के मंदिर में रामकथा उत्कीर्ण है। जावा में 'चण्डी–लर–जोग्रङ्ग' के मंदिर की दीवारों पर भी रामायण के चित्र अंकित है। यहाँ का मुस्लिम समुदाय भी रामकथा के अभिनय में अत्यधिक रूचि लेता है।[7क]

इंडोनेशिया की स्वाधीनता के बाद न्यूगिनी के पश्चिमी भाग के उपर हालैंड ने कब्जा बनाये रखा। इंडोनेशिया द्वारा बार–बार इसकी मांग करने पर डच सरकार (हालैंड) ने कोई ऐसा साक्ष्य प्रस्तुत करने को कहा जिससे कि ऐसा लगे कि वह भू–भाग इंडोनेशिया का रहा हो, इस पर इण्डोनेशियाई मण्डल के नेता ने सीता की खोज पर जानेवाले बानर–दल को जहाँ–जहाँ गए थे उनमें न्यूगिनि के उस भाग के बारे में बताया। हालैंड अब (नीदरलैंड) के प्रतिनिधि के प्रतीवाद करते हुए कहा कि रामकथा तो भारत के हिन्दुओं का ग्रन्थ है इससे आपसबों का क्या लेना देना? जिसके उत्तर में इंडोनेशियाई प्रतिनिधि ने कहा–राम हमारे देश के लोकनायक हैं। उनके दिए गए साक्ष्य ने बाद में वह भू–भाग वापस दिलाने में एक बड़ी भूमिका निभायी।

लाओस एक लोकतांत्रिक गणतन्त्र दक्षिण पूर्व एशिया में स्थित एक देश है लाओस में भी रामकथा का विशेष प्रचार है। लाओस में रामकथा के कई संस्करण प्रचलित हैं। लाओस की संस्कृति पर भारतीयता की गहरी छाप है यहाँ रामकथा पर आधारित चार रचनाएं उपलब्ध है–1. फ्रलक–फ्रलाम (रामजातक), 2. रूवाय थोरफी, 3. ब्रह्म चक्र (पोम्माचक्र), 4. लंका नोई। यहाँ समय–समय पर रामकथा का रंगमंच पर अभिनय किया जाता है जिसे वहाँ के निवासी बड़े हर्षोल्लास के साथ देखते है।

प्रशांत–महासागर के पश्चिमी तट पर स्थित आधुनिक वियतनाम का प्राचीन नाम चम्पा है।[8] प्राचीन काल में इस क्षेत्र में एक हिन्दू राज्य स्थापित था, हिन्दू संस्कृति के चिन्ह आज भी चम्पा में हिन्दू मूर्तियों एवं लाल ईंट के मंदिरों में देखे जा सकते हैं। वियतनाम के वोचान नामक स्थान से एक क्षतिग्रस्त शिलालेख भी मिला है जिस पर संस्कृति में 'लोकस्य गतागतिम्' उकेरा हुआ है। दूसरी या तीसरी शताब्दी में उत्कीर्ण यह उद्वरण रामायण के अयोध्याकांड के एक श्लोक का अंतिम चरण है –

कुद्ध माज्ञाय रामं तु वसिष्ठः प्रत्युवाचह ।
जाबालिरपि जानीते लोकस्यास्यगतागतिम ।।

दशरथ एवं उनके पुत्र राम का वियतनाम के अभिलेखों में बार–बार उल्लेख हुआ है –

दशरथनृपजोऽयं राम इत्याशया यं
श्रयति विधिपुरोगा श्रीहरो युक्तिरूपम् ।

दक्षिणी पूर्वी एशिया में मलेशिया एक इस्लाम धर्म का अनुयायी देश है, परन्तु यहाँ भी रामकथा का व्यापक प्रभाव दिखायी पड़ता है। मलेशिया का इस्लामीकरण 13वीं शताब्दी के आस–पास हुआ। मलय रामायण की प्राचीनतम पांडुलिपि बोडलियन पुस्तकालय में 1633 ई० में जमा की गयी थी मलेशिया की रामायण का नाम 'हिकायत सेरीराम' है। इस ग्रन्थ का आरंभ रावण की जन्म कथा से हुआ है। मलेशिया में रामायण की घटनाओं का रंगमंच पर रोचकता के सथ मंचन किया जाता है यहाँ मुस्लिम अपने नाम के साथ राम लक्ष्मण और सीता का नाम जोड़ते है।

भारतीय संस्कृति के जानकार जुआन आर फ्रैंसिस्को और जॉसेफीन आकोस्ता पसरीचा के अनुसार फिलीपींस में 9वीं या 10वीं शताब्दी के समय हिन्दू लोक कथाएं पहुँची थी। फिलीपींस में रामायण को 'महारादिया लावना' कहते हैं। जिसका अर्थ है 'राजा रावण' फीलीपींस के 31वें आसियान शिखर सम्मेलन में फीलीपीन्स के कलाकारों द्वारा रामायण की प्रस्तुति देखने के बाद भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने अपनी खुशी ट्विट्र पर साझा अपने शब्दों में किया –''सेरेमनी में म्यूजिकल रामा हरि द्वारा रामायण के कुछ अंश की प्रस्तुति की गयी। रामा हरि में रामायण के बहुत से हिस्सों को

काफी खुबसुरती से दर्शाया गया। यह हमारे गहरे ऐतिहासिक संबंधों को दर्शाता है। फिलीपींस का प्रसिद्ध नृत्य 'सिंगकिल' भी रामायण पर आधारित है।

जातक की बहुत सी कथाएं चीन से होकर जापान पहुंची। चीन में राम कथा का एक अलग रूप है। चीनी कथा के अनुसार 7,323 ई० पू० राम का जन्म हुआ। चीन के रामायण को 'अनामकं जातकम्' के नाम से जाना जाता है। फादर कामिल बुल्के के अनुसार तीसरी शताब्दी ईस्वी में 'अनामकं जातकम्' का कांग–सेंग हुई द्वारा चीनी भाषा में अनुवाद हुआ था जिसका मूलपाठ नहीं है। इस कथा का बौद्ध लोक कथा के रूप में चीनी अनुवाद हुआ और इसे लियेऊ–तुत्सी किंग नामक पुस्तक में शामिल किया गया । इन्हीं स्रोतों से यह जापान की बारहवीं सदी की कृति होंबल्स 5 में आया यह कृति 'तादूरा–नो यातूयोरी' से सम्बन्धित है।

रामकथा के प्रभाव से सोवियत संघ भी अछूता न रह सका। सुप्रसिद्ध सोवियत भारत विद्याविद् अलेक्सेई बारान्निकोव (1890–195) ने 10 वर्ष से अधिक परिश्रम के पश्चात् स्व० श्यामसुन्दरदास द्वारा सम्पादित तुलसी कृत 'रामचरितमानस' का रूसी भाषा के छन्दोबद्ध अनुवाद किया, जिसे सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी ने सन् 1948 में प्रकाशित किया। रूस के उत्तर के विस्तृत भू–भाग साइबेरिया तक रामकथा का विस्तार हुआ। तिब्बती और खोतानी भाषा में लिखी रामकथा रूस से प्रसारित हुयी, जिसका समय तीसरी से नौवीं सदी बताया जाता है। साइबेरिया के बुर्यात् प्रदेश में जहाँ बर्फ ढकी रहती है, सर्वप्रथम 12वीं, 13वीं शताब्दी में लिखी एक पुस्तक में रामायण का एक सारांश प्रकाशित हुआ तत्पश्चात् – मंगोलो (जीवक जातक) और तुर्को के प्रभाव से यह रामकथा बोल्गा नदी क्षेत्र में पहुँची जहाँ की एक जाति हाल्मिक में यह लोकथा के रूप में प्रचलित हुई। रूस के महान साहित्यकार 'लियो–तोल्स्तोय' ने अपने पत्रों में रामायण के उपदेशात्मक तथा ज्ञान–प्रधान कथन को उदृत किया है।[9]

श्री लंका और नेपाल का रामायण से निकट संबंध है। भानुभक्त के द्वारा रचित 'भानु भक्तिय' रामायण नेपाल के नेवारी भाषा में लिखी गयी है। मूलतः इसमें अध्यात्म रामायण का नेपाल की भाषा में काव्यांड्कन हुआ है। रामायण के नेपाली भाषा के कई अनुवाद अपार लोकप्रियता प्राप्त कर चूके हैं।

रामायण का पोलिश भाषा में अनुवाद पोलैंड के जानुस्जक्रव्यजोवस्की ने किया है जो भारतीय दर्शन एवं सस्कृति से काफी प्रभावित है।

भगवान राम का उदात्त चरित्र देश काल धर्म और जातिगत सीमाओं को लांघकर सर्वत्र प्रसिद्ध है। श्रीराम के यश कीर्ति की मूलकथा तो महर्षि बाल्मीकि वाली ही है किंतु स्वाभाविक रूप से स्थानीय संस्कृतियों तथा लोकाचारों का प्रभाव उन कथाओं पर अवश्य पड़ा है।

संदर्भ सूची :

1. बाल्मीकि रामायण – 1/2/37
2. बाल्मीकि रामायण – युद्धकांड
3. रामबिलास शर्मा, भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश, किताबघर प्रकाशन, पृ० 673–674,
4. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली पृ० 13,
5. नवनीत हिन्दी डाइजेस्ट, भारतीय विद्या भवन (सितम्बर 1986)
6. दीनबंधु चन्दोरा, आदित्य चन्दोरा, हिन्दू–शतकम्, ग्रेटर एटलांटा बैदिक टेम्पल सोसायटी, एटलांटा जार्जिया, पृ० 55–57
7. रामशरण शर्मा, प्रारंभिक भारत का परिचय,
7. क) तत्रैव (वही)
8. कल्याण, रामभक्ति, अंक–68, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ० 311
9. कल्याण, रामभक्ति, अंक–68, पृ० 317

जगदंब महाविद्यालय, छपरा

10

भारतीय समाज के पथ प्रदर्शक के रूप में रामायण

प्रतिभा तिवारी

भारतीय संस्कृति वसुधैव कुटुम्बकम की भावना का प्रतीक है। यहां के ऋषियों, मुनियों ने उदारतापूर्ण विश्व कल्याण के अनके कार्य किए हैं। आदि कवि महर्षि वाल्मीकि जी ने किसी प्राचीन काव्य को बिना देखे, किसी ग्रन्थ से बिना ही सहारा लिये सर्वोत्तम काव्य रामायण की रचना कर विश्व कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है। राम के धरातल पर अवतीर्ण होने पर वाल्मीकि जी ने रामायण के रूप में वेद ही प्रकट किये है, ऐसी आस्तिकों की चिरकाल से मान्यता है। इसलिए श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण की वेदतुल्य ही प्रतिष्ठा है। यह भूतल का प्रथम काव्य है। वह सभी के लिये पूज्य ग्रन्थ है और देश की सच्ची बहुमूल्य राष्ट्रीय निधि है वह इनके लिए संग्रह, पठन, मनन एवं श्रवण करने की वस्तु है। वास्तव में श्रीव्यासदेवादि सभी कवियों ने रामायण का अध्ययन कर पुराण, महाभारत आदि का निर्माण किया। यही कारण है कि कविकुल तिलक कालिदास ने रघुवंश में आदि कवि को दो बार स्मरण किया है। करूण रस के आचार्य भवभूति ने अपनी कृति उत्तर रामचरितम्के दूसरे अंक में **वाल्मीकिपार्श्वादिह पर्यतामि मुनयस्तमेव हि पुराणब्रम्हवादिनं प्राचेतसमृषिं.....उपासते** आदि से उन्हीं का स्मरण करते हैं। महाकवि भाष, आचार्य शंकर, रामानुजादि सभी सम्प्रदायाचार्य, राजा भोज आदि परवर्ती विद्वानों से लेकर हिन्दी साहित्य के प्राण गोस्वामी तुलसीदास जी तक ने **बंदऊँ मुनि पद कुंज रामायन जेहिं निरमयऊ।**[1] जन आदि कवि नाम प्रतापू, बाल्मीकि ने **ब्रम्हसमाना** (रामचरित मानस), जहां बाल्मीकि भये ब्याधतें मुनिदुं साधु मरा मरा जपें सिख सुनि रिषि सात की ***'कहत मुनीस महेस महातम उलटे सीधे नाम को'***[2] महिमा उलटे नाम की मुनि कियो किरातों। **'उलटा जपत कोलते धए ऋषिराव**[3] **राम बिहाई मरा जते बिगरी सुधरी कवि कोकिलहू कीं**[4] इत्यादि पदों से इनका बार–बार श्रद्धापूर्वक स्मरण किया है। परन्तु कुछ लोग महर्षि वाल्मीकि जी को निम्न जाति का मानते हैं, परन्तु वाल्मीकि रामायण 7/93/17, 7/96/19 तथा अध्यात्म रामायण 7/7/31 में इन्होंने स्वयं अपने को प्रचेता का पुत्र कहा है–**प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन**। ***'प्रचेतसं वसिष्ठं च मृगुं नारदमेव च'***[5] प्रचेता को वसिष्ठ, नारद,पुलस्त्य, कवि आदि का भाई लिखा है। वालमीकीय रामायण विश्व का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है इसमें ज्योतिष शास्त्र, आयुर्वेद विज्ञान, राजनीति, मनोविज्ञान, तन्त्रशास्त्र, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, नीतिशस्त्र, व्यवहार तथा आचार आदि की बातें सम्मिलित हैं जिससे समाज के आम नागरिकों को जीवन–जीने की कला का ज्ञान प्राप्त होता है। रामायण में जीवन का समूचा क्षेत्र सम्मिलित है। सुन्दरकाण्ड में हनुमान् जी की वार्तालाप कुशलता सर्वत्र देखते ही बनती है। श्रीराम की प्रतिपादन शैली, दशरथ जी की सम्भाषण पद्धति , रावण का कथन, श्रीराम का कैकेयी संवाद, श्रीराम का चित्रकूट में भरत से संवाद आदि सच्ची मानवता के पथप्रदर्शक हैं। त्रिजटा के स्वप्न, श्रीराम का यात्राकालिक मुहूर्त विचार, विभीषण द्वारा लंका के अपशुकनों का प्रतिपादन, श्रीराम जब अयोध्या से चलते हैं तो नौ ग्रह एकत्र हो जाते है, इससे लंकायुद्ध होता है। दशरथ जी श्रीराम से ज्योतिषियों द्वारा अपने अनिष्ट फलादेश की बात बतलाते हैं, इसमें **ज्योतिषशास्त्र** का ज्ञान मिलता है। युद्धकाण्ड के 91वें सर्ग में **आयुर्वेद विज्ञान** की बाते हैं, युद्धकाण्ड के 18 वें सर्ग तथा 63/2 से 25 श्लोक तक, **राजनीति** का ज्ञान प्राप्त होता हैं युद्धकाण्ड 73/24 से 28 में **तन्त्रशास्त्र** का ज्ञान मिलता हैं। इसमें **रावण** तथा **मेघनाद** को भारी तान्त्रिक दिखलाया गया है। रावण भी भारी तान्त्रिक था। उसकी ध्वजा पर तान्त्रिक का चिन्ह

[1] (कवितावली, उत्तरकाण्ड 138 से 140)
[2] (विनयपात्रिका 151)
[3] (बरवै रामायण 54)
[4] (कवितावली 7/88)
[5] मनुस्मृति 1/35 में

नरशिरकपाल–मनुष्य की खोपड़ी का चिन्ह था।

राजनीति उन्नति की कुंजी मानी जाती है। **रामायण** में वर्णित वाल्मीकि की **राजनीति** बहुत उच्च कोटि की है। जब भरत श्रीराम को वापस लेने चित्रकूट आए थे, उस समय श्रीराम ने अयोध्या की कुशलता पूंछने के बहाने **भरत** को राजनीति सिखाई। वर्तमान में उसी **राजनीति** का जन प्रतिनिधियों द्वारा अनुसरण किया जाना चाहिए। भरत को चिंतित देख, श्रीराम ने कहा, तुम माता–पिता गुरूवसिष्ठ, अर्थशास्त्र (राजनीति) के पण्डित आचार्य सुघन्वा का आदर करते हो या नहीं। तुम राज्य की भलाई के लिए रात के पिछले पहर में अर्थ सिद्धि के उपाय पर विचार करते हो या नहीं। कोई भी मन्त्रणा दो से चार कानों तक ही गुप्त रहती है, छः कानों में जाते ही वह फूट जाती है। राम ने कहा कि तुम किसी गूढ़ विषय पर अकेले ही तो विचार नहीं करते या बहुत लोगों के साथ बैठकर मन्त्रणा तो नहीं करते। कहीं ऐसा तो नहीं होता कि तुम्हारी निश्चित की हुई गुप्त मन्त्रणा फूटकर शत्रु के राज्य तक फैल जाती हो–

कच्चिन्मन्त्रःसे नैकः कच्चिन्न बहुभिः सह।
कच्चित ते मन्त्रितों मन्त्रोंराष्ट्रं न परिधावति।।[6]

तुम्हारी योजना की सफलता का पता कार्य पूर्ण होने पर या पूरे होने के समीप पहुंचने पर ही दूसरे राजाओं को ज्ञात होना चाहिए। कहीं ऐसा तो नहीं होता कि तुम्हारे भावी कार्यक्रम को वे पहले ही जान लेते हों। भरत विद्वानों का सहयोग सदैव लेना चाहिए। सौ मूर्खों की तुलना में एक विद्वानही अर्थ संकट के समय कल्याण कर सकता है। इस लिए विद्वान व्यक्ति को ही अपना सलाहकार बनाना चाहिए। यदि राजा हजार या दस हजार मूर्खो को अपने पास रख ले तो भी उनसे सहायता नहीं मिलती। परन्तु एक मेघावी, शूरवीर, चतुर एवं नीतिज्ञ हो तो वह राजा या राजकुमार को बहुत बड़ी सम्पत्ति की प्राप्ति करा सकता है। भरत तुमने प्रधान व्यक्तियों को प्रधान, मध्यम श्रेणी के मनुष्यों को मध्यम और छोटी श्रेणी के लोगों को छोटे काम में नियुक्त किया है न ? राम ने कहा भरत, जो बाप–दादों के समय से ही कार्य करते आ रहे हों, ऐसे ही मन्त्रियों को उत्तम कार्यों में नियुक्त किया जाना चाहिए। प्रजा कठोर दण्ड से मन्त्रियों का तिरस्कार तो नहीं करती, प्रजा से अधिक **कर** तो नहीं वसूलते, योग्य, शूरवीर, धैर्यवान, बुद्धिमान व्यक्ति को सेनापति बनाया है कि नहीं ? सैनिकों को समय पर वेतन देते हो या नहीं ? यदि ऐसा नहीं करते, तो तुम्हे राजगद्दी पर बैठने का अधिकार नहीं है। राम ने कहा, भरत, तुम्हे ईमानदार व्यक्ति को राजदूत नियुक्त करना चाहिए। राजा को शत्रु पक्ष के **अट्ठारह तीर्थों** पर कड़ी नजर रखना चाहिए। वे 18 तीर्थ इस प्रकार है,– शत्रु पक्ष के मन्त्री, पुरोहित, युवराज, सेनापति, द्वारपाल, अन्तर्वेशिकयानी (अन्तःपुर का अध्यक्ष), कारागाराध्यक्ष यानी (पहरेदारों को काम बताने वाला), नगराध्यक्ष यानी (कोतवाल), कार्यनिर्माणकर्ता यानी (शिल्पियों का परिचालक), धर्माध्यक्ष, सभाध्यक्ष, दण्डपाल, दुर्गपाल, राष्ट्रसीमापाल तथा वनरक्षक। जिन शत्रुओं को राज्य से निकाल दिया हो, यदि वे लौटकर आते है, तो उनकी उपेक्षा नहीं करना चाहिए। अपने नगर अयोध्या की रक्षा करना चाहिए। देवस्थान, पौंसले, तालाब आदि की रक्षा करना चाहिए। कृषि और गोरक्षा से आजीविका चलाने वालों की रक्षा करना चाहिए। स्त्रियों के मान–सम्मान की व्यवस्था करना चाहिए। राम ने भरत से पूंछा कि तुम प्रजा से मिलते हो न क्या कर्मचारी तुमसे डरते है ? क्या तुम्हारे सभी दुर्ग धन–धान्य, अस्त्र–शस्त्र, जल, यन्त्र, शिल्पी तथा धनुधरि सैनिकों से भरे–पूरे रहते है ? क्या तुम्हारी आय अधिक व्यय बहुत कम है ? तुम्हारे खजाने का धन अपात्रों के हाथ तो नहीं चला जाता ? तुम्हारा धन देवता, पितर,ब्राम्हण अभ्यागत, योद्धा तथा मित्रों के लिये ही खर्च होना चाहिए। किसी निर्दोष पर दोष नहीं लगाया जाना चाहिए, चोर को धन के लालच में दंड से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। राज्य में निष्पक्ष निर्णय किया जाना चाहिए। श्री राम ने भरत से अनेक प्रश्न पूछंकर राजनीति की शिक्षा दे दी उन्होने भरत से प्रश्न पूंछा क्या तुम वृद्ध पुरूषों, बालकों और प्रधान'–प्रधान वैद्यों का आन्तरिक अनुराग,मधुर वचन और धनदान से सम्मान करते हो ?

गुरूजनों, वुद्धों, तपस्वियों, देवताओं, अतिथियों, वीर, समस्त ब्राम्हणों को नमस्कार करते हो न ? तुम अर्थ के द्वारा धर्म को अथवा धर्म के द्वारा अर्थ को हानि तो नहीं पहुंचातें ? क्या तुम समय का उचित

[6] (आयोध्याकाण्ड सर्ग 100/श्लोक 18)

विभाजन करके धर्म, अर्थ और काम का योग्य समय में सेवन करते हो ? क्या तुम **नीतिशास्त्र** की आज्ञा के अनुसार चार या तीन मन्त्रियों के साथ–सबको एकत्र करके अथवा सबसे अलग–अलग मिलकर सलाह करते हो ? क्या तुम वेदों की आज्ञा के अनुसार काम करके उन्हें सफल करते हो ? हमारे पिता जी जिस वृत्ति का आश्रय लेते है, हमारे पितामह ने जिस आचरण का पालन किया है सत्पुरूष भी जिसका सेवन करते है और जो कल्याण का मूल है, उसीका तुम पालन करते हो न? तुम स्वादिष्ट भोजन अकेले ही तो नही खाते हो? उसकी आशा रखने वाले मित्रों को भी देते हो न? जो राजा प्रजा के सुख–दुख को ध्यान में रखकर राज्य करता है, वह स्वर्गलोक को जाता है। राम ने भरत को राजा के **14 दोष** त्यागने के लिए कहा जो इस प्रकार है– *नास्तिकता, असत्य–भाषण,क्रोध, प्रमाद, दीर्घसूत्रता, ज्ञानी पुरूषों का संगन करना, अलस्थ, नेत्र आदि पाँचों इन्द्रियों के वशीभूत होना, राजकार्यों के विषय में अकेले ही विचार करना, प्रयोजन को न सम्भालने वाले विपरीतदर्शी मूर्खों से सलाह लेना, निश्चित किये हुए कार्यों शीघ्र प्रारम्भ न करना, गुप्त मन्त्रयणा को सुरक्षित न रखकर प्रकट कर देना, मांगलिक आदि कार्यो का अनुष्ठाान न करना तथा सब शत्रुओ पर एक ही साथ चढ़ाई कर देना आदि।*

रामायण मनुष्य के लिए सच्चा मार्गदर्शक ग्रन्थ है। इसमें नैतिकता, कर्तव्यपरायणता, दया, प्रेम, करूणा व क्षमा आदि के आदर्श मनुष्य के जीवन को देवतुल्य बनाते है। यदि आज का मानव रामायण में दिए गए आदर्शों का अनुसरण करें, तो दुनिया में सुख, शान्तिचारों ओर दिखाई देगी। क्षमा का दृष्टान्त देते हुए विश्वामित्र जी श्रीराम से कहते हैं कि पूर्वकाल में कुशनाम के राजा की पत्नी घृताची अप्सरा से सौ पुत्रियों का जन्म हुआ। वे सभी सुन्दर कन्याएं, एक दिन गातीं, बजातीं और नृत्य करती हुई एक उद्यान में पहुंची। उनकी सुन्दरता को देखकर वायु देवता ने उनसे विवाह का प्रस्ताव रखा और कहा कि मेरे साथ सम्बन्ध हो जाने पर तुम लोग अक्षय यौवन प्राप्त करके अमर हो जाओगी

"चलं हि यौवनं नित्यं मानवेषु निशेषतः।
अक्षयं यौवनं प्राप्ता अमर्यश्च भविष्यति।।

(वाल्मीकि रामायण/बालकाण्ड/ 32/ 20)

राजा कुशनाम की कन्याओं ने वायुदेवता से कहा कि हमारा आपके प्रति कोई आकर्षण नहीं है, अनुचित प्रस्ताव करके आप हमारा अपमान न करें। हम सब राजर्षि कुशनाम की कन्याएं है। हम सब आपकों शाप देकर वायु देवता के पद से भ्रष्ट कर सकती हैं, किन्तु हम ऐसा करना नहीं चाहती; क्योंकि हम अपने तप को सुरक्षित रखती है–

"कुशनामसुता देवाः समस्ताः सुरसत्तम।
स्थानाच्यावयितुं देवं रक्षामस्तु तपो वयम्।।

(वाल्मीकि रामायण/बालकाण्ड/32/21)

कन्याओं ने कहा वह समय कभी न आवे कि हम अपने पिता की अवहेलना करके कामवश या अत्यन्त अधर्मपूर्वक स्वयं ही वर ढूढ़ने लगें। हम लोगों पर हमारे पिता जी का प्रभुत्व है, वे हमारे लिए सर्वश्रेष्ठ देवता है। पिताजी हमें जिसके हाथ में दे देगें, वही हमारा पति होगा–

"पिता हि प्रभुरस्माकं दैवतं परमं च सः।
नोदास्यति पिता यस्य स नो भर्ता भविष्यति।।

(वाल्मीकि रामायण/बालकाण्ड/32/22)

उन कन्याओं की बात सुनकर वायु देवता नाराज हो गए। वे उनके भीतर प्रविष्ट हुए और उनके सब अंगों को मोड़कर टेढ़ा कर दिया। शरीर मुड़ जाने के कारण वे कुबड़ी हो गयीं। उनकी आकृति मुट्ठी बांधे हुए एक हाथ के बराबर हो गई। वे भय से व्याकुल हो गयीं। वे कन्याएं राजभवन में आयीं, उन्हें कुबड़ी हालत में देखकर राजा कुशनाम घबरा गए। सभी पुत्रियों ने बताया कि वायु देवत अशुभ मार्ग का अवलम्बन करके हम पर बलात्कार करना चाहते थे, हम सब बहिनों ने उनके विवाह के प्रस्ताव को ठुकरा दिया, इसलिए उन्होनें हमें कुबड़ी बना दिया। इस पर पिता कुशनाम ने कहा, पुत्रियों क्षमाशील महापुरूष ही जिसे कर सकते हैं, वही **क्षमा** तुमने भी की है। यह तुम लोगों के द्वारा महान कार्य सम्पन्न हुआ है। तुम सबने एक मत होकर जो मेरे कुल की मर्यादा पर ही दृष्टि रखी हैं,कामभाव को अपने मन में स्थान नहीं दिया है वह भी तुमने बहुत बडा काम किया है। स्त्री हो या पुरूष, उसके लिए **क्षमा ही आभूषण** हैं तुम लोगों में समान रूप से जैसी क्षमा या सहिष्णुता है, वह विशेषतः देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। कुशनाम ने कहा कि पुत्रियों, क्षमा दान है, क्षमा सत्य है, क्षमा यज्ञ है, क्षमा यश है और क्षमा धर्म है, क्षमा पर ही यह सम्पूर्ण जगत टिका हुआ है।

क्षान्तं क्षमाचतां पुण्यं कर्तव्यं सुमहत् कृतम्।

ऐकमित्यमुपागम्य कुलं चावेक्षितं मम।।
अलंकारों हि नारीणां क्षमा तु पुरूषष्य वा।
दुष्करं तच्च वै क्षान्तं त्रिदशेषु विशेषतः।।
यादृशी वः क्षमा पुण्यं सर्वासामविशेषतः।
क्षमा दानं क्षमा सत्यं क्षमा यज्ञाश्च पुत्रिका :।।
क्षमायशः क्षमा धर्मः क्षमायां विष्ठितं जगत्।

(बाल्मीकि रामायण/बालकाण्ड/33/6,7,8)

कुशनाम ने अपनी पुत्रियों के विवाह के लिए मन्त्रियों के साथ बैठकर मन्त्रणा की। उन दिनो वहां **चूली** नाम के मुनि वेदोक्त तप का अनुष्ठान कर रहे थे। वहीं पर **सोमदा** नाम की **गन्धर्व कुमारी** जो **उर्मिला** की पुत्री थी, मुनि को प्रणाम करके उनकी सेवा में लगी रहती थी। सोमदा ने मुनी से पुत्र प्राप्ति के लिए वरदान मांगा जिससे उसे ब्रह्मदत्त नाम का पुत्र हुआ। उसी ब्रहमदत्त से कुशनाम ने अपनी पुत्रियों का विवाह कर दिया। विवाह काल में उन कन्याओं के हाथों का ब्रहमदत्त के हाथ में स्पर्श होते ही वे सब कन्याएं कुब्जत्व दोष से रहित, नीरोग तथा उत्तम शोभा से सम्पन्न प्रतीत होने लगीं। **सोमदा** पुत्रवधुओं को पाकर अति प्रसन्न हुई। आज रामायण के आदर्श विश्व में अनुकरणीय है, इससे **वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना** को बल मिला है।

सन्दर्भ स्रोत :

(1) बृहद्धर्म पुराण, प्रथमखण्ड 30/47,51
(2) बृहद्धर्मपुराण 2/30/55
(3) वाल्मीकि रामायण/बालकाण्ड/सर्ग 32/श्लोक 20,22,
(4) बाल्मीकि रामायण/बालकाण्ड/सर्ग 33/श्लोक 6,7,8
(5) (कवितावली उत्तरकाण्ड 138 से 140)
(6) (विनयपात्रिका 151)
(7) (बरवै रामायण 54)
(8) (कवितावली 7/88)
(9) मनुस्मृति 1/35 में
(10) (आयोध्याकाण्ड सर्ग100/श्लोक 18)

शोधछात्रा, संस्कृत,
बुंदलेखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी

पुस्तक भारती रिसर्च जर्नल

Reg No. 124726035RC0001

ISSN : 2562-6086

Price : $ 20.00, ₹ 400

वर्ष 5 जुलाई–दिसंबर, 2023 अंक 3–4

पुस्तक भारती के प्रकाशन

संपादकीय कार्यालय

Toronto, Ontario, Canada, M2R 3E4

email : pustak.bharati.canada@gmail.com

प्रबंध एवं वितरण

Pustak Bharati (Books-India)Publishers & Distributors

H.No. 168, Nehiyan,Varanasi-221202, U. P. India

email: pustak.bharati.india@gmail.com